## सरहपाद

१ (२२)[१]

अपणे रचि रचि भवनिर्वाणा[२]।
मिछें लोअ बन्धावए अपणा॥
अम्हे[३] ण जाणहुँ अचिन्तजोइ।
जाम मरण भव कइसण होइ॥
जइसो[४] जाम मरणवि तइसो।
जीवन्ते मइलें[५] णाहि विशेसो॥
जा एथु जाम मरणे विसङ्का[६]।
सो करउ रस रसानेरे कङ्खा॥
जे सचराचर तिअस भमन्ति।
ते अजरामर किम्पि न होन्ति॥
जामे काम कि कामे जाम।
सरह भणति अचिन्त सो धाम॥

× × ×

अपने रचि रचि भव निर्वाणा।
मिथ्ये लोक बन्हावए अपना॥
हम न जानी अचिन्त्य योगि (गी)।
जन्म मरण भव कइसन होइ॥
जइसे जन्म मरणो तइसे।
जीने मुइने नाहि विशेषे॥
जे एत जन्ममरणे विशङ्का।
से करओ रस रसायन (क) कांक्षा॥

---

१। कोष्ठक संख्या, सप्तगीतमे, चर्यागीत, च० वि० पोथीक चर्यागीतक संख्या थिक।
२। सेन—णिमाणा ३। सेन—अम्मे ४। सेन—जइसा
५। चर्यागीत। शास्त्री, सेन—मइलें ६। सेन—वि सङ्का

जे सचराचर त्रिदश ( पुर ) भमथि ।
से अजरामर किमपि (किछु) न होथि ॥
जम्में कर्म की कर्में जन्म ।
सरह भणथि अचिन्त्य से धर्म ॥

जगतक बन्धन आ' मोक्ष एहि दूनू विकल्पकेँ रचि रचि, कपोल-कल्पित कए, व्यर्थे लोक अपनाकेँ बन्हैत अछि। हम तँ अचिन्त्ययोगसिद्ध भए गेलहुँ (परमात्मलीन भए गेलहुँ), आब तँ बुझबहिमे नहि अबैत अछि जन्म-मरण लक्षित जगतक स्वरूप केहन छैक। हमरा हेतु तँ जेहने जन्म तेहने मरण, कारण जीवन्मुक्त छी (जीवित रहितहुँ मोक्ष प्राप्त कएने छी)। आब जीवन की? आ' मृत्युए की? दूनूमे कोनो विशेष नहि प्रतीत होइत अछि। जकरा जन्म-मरणक विकल्प रहैत छैक से रस (-सिद्धिक पश्चात् परमानन्द) तथा रसायनादि द्वारा योगसाधनाक इच्छा करैत अछि। जा' धरि आत्मा चराचरलोकमे, मृत्युभुवन आ स्वर्गमे, भ्रमण करैत रहैत अछि ता' धरि ओ अजर अमर (मुक्त) नहि मानल जाएत (स्वर्गहुसँ तँ पुण्यक्षय भेला पर पतन देखल गेल अछि)। मुक्ति ओएह थिक जकर पश्चात् आत्मा नित्य अविनाशी आनन्दमे लीन भए जाइत अछि। सरह कहैत छथि, हमरा एहि विवादमे नहि जेबाक अछि, हम इएह जनैत छी जे वस्तुतः एकै टा धाम (पवित्र लक्ष्य) अछि, ओ थिक अनुत्तरत्वलाभ, शिवत्वलाभ, जे अचिन्त्य थिक, अवाङ्मनसगोचर थिक।

२ ( ३२ )

नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल[1] ।
चिअराअ सहावे मुकल ॥
उजु रे उजु[2] छाडि मा लेहु रे बङ्क ।
निअडि[3] बोहि मा जाहु रे लाङ्क ॥
हाथे रे[4] काङ्कण मा लेउ दापण ।
अपणे अपा बुझ तु निअमण ॥
पार उआरेँ सोइ गजिइ[5] ।

१। बगीची। शास्त्री, सेन—न शशि (रवि) मण्डल
२। सेन—उजु उजु रे उजु ३। बगीची। शास्त्री—निअडि। सेन—निअडिह
४। सेन। शास्त्री—हाथेरे ५। बगीची। शास्त्री, सेन—गजिइ



दुज्जण साङ्गे अवसरि जाइ ॥
वाम दाहिण जो खाल विखला ।
सरह भणइ बापा[6] उजुबाट भाइला ॥

× × ×

नाद न बिन्दु न रवि-शशिमण्डल ।
चित्तराज स्वभावेँ मुकल (मुक्त) ॥
सोझ रे! सोझ छाड़ि न लएह बङ्क (!) ।
निअर बोधि न जाइ रे! लङ्क (!) ॥
हाथे रे! कङ्कण न लएह दर्पण ।
अपने आत्मा बुझइ हौं निज मन ॥
पार उबारेँ से डूबए (मज्जति)।
दुर्जन सङ्ग (जे) अपसरि जाए ॥
वाम-दहिन जे खद्दा-खुद्दी (छल)।
सरह भनइ बाप! सोझ बाट भेल ॥

चित्तक शोधनक हेतु नाद, बिन्दु, रवि-शशिमण्डल कथूक साधनक प्रयोजन नहि। चित्तराज स्वभावतः मुक्ते छथि, हुनका सोझहि बाटपर जाए दहुन, टेढ़ बाटपर नहि। निकटहिमे बोधि, परम प्रकाश-विमर्श-बोध प्राप्त होएतह, तखन चित्तकेँ दूर देश लङ्का दिशि नहि लए जाह। शरीरहिमे समस्त ब्रह्माण्ड तथा सभक सार तत्त्व शिवशक्ति छथि तखन ओहि परम सत्ताकेँ देहमे नहि ताकि अनतह की तकैत छह? हाथमे कङ्कना तखन अएनाक काजे की? अपनहि आत्माएँ अपन मनकेँ चिन्हह, आत्म-बोध भेला पर अपन मनकेँ चिन्हिए जएबह। जे दुर्जन (अन्य सम्प्रदायक पोषक आचार्य) क सङ्गमे पड़ि जाइत छथि आ' एहि सहजमार्गसँ अपसृत भए जाइत छथि से जगतक पार-वारीमे डूबि जाइत छथि, जन्ममरणक चक्रमे नष्ट भए जाइत छथि। सरह कहैत छथि, वाम-दक्षिण मार्गमे जे खद्दा-खुद्दी छल से सभ एहि बाटमे नहि रहल। ई बाट, कौलमार्ग, सोझ बाट भए गेल।

६। सेन—बप।

३ ( ३८ )

काअ णावड़ि[1] खाण्टि मण केड़ुआल ।
सद्गुरुवअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ[2] ।
आन[3] उपाये पार ण जाइ ॥
नौ वाही[4] नौका टाणअ गुणे[5] ।
मेलि मेलि[6] सहजे जाउ ण आणें ॥
वाटत भअ[7] खाण्ट वि[8] बलआ ।
भव उलोलेँ विषअ बोलिआ[9] ॥
कुल लइ खर सोन्तेँ[10] उजाअ ।
सरह भणइ गअणेँ समाअ[11] ॥

× × ×

काय नावक खुट्टी मन करुआरि ।
सदगुरुवचने धर पतवार ॥
चित्त थिर करि धरहु रे नाव [इ] ।
आन उपायेँ पार न जाइ ॥
नाव - वाही नौका टानए गुणे ।
मेलि मेलि सहजेँ जाउ न आनें ॥
बाटे भय खण्टो बली ।
भव - उल्लोलेँ विषय तोड़ी [तोड़ि] ॥
कुल लए खर सोतेँ उजाइ[12] ।
सरह भनथि [ तोँ ] गगने समाइ ॥

१ । सेन-णावड़ि   २ । सेन—नाइो । तु० मैथिली 'नाइ' (निम्नवर्गक शब्द )
३ । चर्गोको । शास्त्री, सेन—अन
४ । सेन—नौवाहो   ५ । सेन—टाग्रु अगुणे ६ । चर्गोको । शास्त्री, सेन—मेलि मेल
७ । चर्गोको । शास्त्री, सेन—बाट अभअ
८ । चर्गोको । शास्त्री—खाण्टवि । सेन—खाण्टा वि
९ । सेन—वि बालिआः   १० । सेन । शास्त्री—सोन्ते   ११ । सेन—पसाएँ
१२ । मै० 'उजहिआ' शब्द द्रष्टव्य



कायकेँ नौका बनाए आ' तकर खुट्टी ( अनाहतचक्र ) मे बान्हल मनकेँ करुआरि बनाए सद्गुरुवचनकेँ पतवार ( कर्णधार द्र० बागची ) मानि पकड़इ । चित्तकेँ स्थिर कए एहि नावकेँ, शरीरनौकाकेँ, पकड़ि आगाँ बढ़इ । आन उपायसँ भवसागर पार नहि कए सकबइ । बाह्य जगतमे नौका-वाहक अन्य गुण ( वा रस्सी ) सँ नाव खेबैत अछि, एहि मार्गमे ओहिसभ गुणक प्रयोजन नहि, सहजस्वरूप शिवशक्तिक अन्तरङ्ग बनि आगाँ बढ़इ, आन रीतिएँ नहि बढ़इ । बाटमे भयास्पद तत्त्व वा घटना भेटइछ, प्रतीत होइतइ जे खड्ग धारण कएने दानवीय जीव तोरा पथच्युत करबाक हेतु कामादिरूपमे लागल छइ, आ' भव-कल्लोलक प्रसङ्गमे अनुभूत विषय-वासनाकेँ तोड़ि, कुलाश्रित भए, शक्तिक आश्रित भए ( कौलमार्गेँ ), भवसागरक प्रखर स्रोतमे आगाँ बढ़इ पार करइ । सरह कहैत छथुन्ह—तोँ शून्यगगनमे अन्तर्लीन भए जाइ, सहजी-शक्तिक अभिन्न बनि जाइ ।

४ ( ३९ )

सुइणा ह अविदार अरे निअमन तोहोर दोसे[1] ।
गुरुवअणविहारेँ रे थाकिब तइ घुण्ड कइसे ॥
अकट हुँ भव इ गअणा[2] ।
बङ्गे जाया निलेसि परे भागेल तोहोर विणाणा ॥
अदभुअ भवमोह रे दिसइ पर अप्पणा ।
ए जग जलबिम्बाकारे सहजेँ सुण अपणा ॥
अमिआ अच्छन्तेँ विस गिलेसि रे चिअ परवस अपा ।
घरेँ-परेँ का[3] बुझिअले मारि[4] खाइब मइ दुठ कुण्डबाँ ॥
सरह भणन्ति वर सुण गोहाली कि मो दुठ[5] बलन्देँ ।
एकेले जग नाशिअ रे विहरहु सुच्छन्दे[6] ॥

× × ×

सपना हे ! अविद्याक अरे ! निज मन दोषेँ ।
गुरुवचनविहारे रहबह तोँ घूमि कइसेँ ॥

१ । सुइणेँ ह[अ]विदारअ रे निअ मन तोहोरेँ दोसे—चर्गोको
२ । सेन—हुँ-भव गअणा   ३ । चर्गोको । शास्त्री—घरेँ परेँक । सेन—घारेँ पारेँ ४ ।
४ । चर्गोको । शास्त्री—रे । सेन—म रे   ५ । सेन—दुठ्ठ
६ । चर्गोको । शास्त्री—विहरहुँ सुच्छन्दे । सेन—विरहु ईदन्दे

अकट[७] हूँ-भव ई गगना ।
वज्रे माया लेलह, परे भागल तोहर विज्ञाना ॥
अद्भुत भवमोह रे ! देखाइ पर अपना ।
ए ! जग जलबिम्बाकारें सहजें शून अपना ॥
अमिअ अछैतें विष गिड़हि रे ! चित्त पररस आत्मा ।
घर-पर की बुझलह रे ! मारि खाएब हम दुष्ट कुण्डवा ॥
सरह भणथि वर सून गोशाला, कि मोर दुष्ट बलदें ( बड़दें ) ।
अकेले जग नाशल रे ! विहरह स्वच्छन्दे ॥

हे ! अरे ! तोहरा अपन मन अविद्या-दोषेँ यथार्थ प्रतीत होइत छह, किन्तु वस्तुतः ओहि प्रतीतिकेँ अयाथार्थ स्वप्न सदृश मात्र बुझह अथवा [ डा० बागची-संस्करणक अनुसार ] शून्यरूप हाथसँ तोँ अपन मनकेँ विदारण करह, दोष दूर करह । गुरुवचन-विहारमे तोँ कोना घूमि सकबह ? जखन तोहर मन एतेक दोषग्रस्त छह तखन ओ विहार कोना कए सकबह ? ई हूँबीजोद्भव गगन अखण्डनीय अछि अथवा ओ गगनहृदया हूँ-बीजोद्भवा महामाया अखण्डा छथि । देखह, तोँ जहाँ वज्र-मायाकेँ, शून्यस्वरूपिणीकेँ, जायाभावेँ स्वीकार कएलह कि परक्षणे तोहर मोहादिविज्ञान दूर भए गेलह । एहि संसारक मोह अद्भुत, पर-अपन एहन भेद प्रतीत होइत रहैत अछि । किन्तु तत्त्वदर्शीकेँ ई जगत् जलमे प्रतिबिम्ब जकाँ, चिद्घनक प्रतिबिम्ब जकाँ, महती शक्तिक आभास मात्र जकाँ, प्रतीत होइत अछि । एवं ओ कल्पनाकेँ सहज-साधना द्वारा शून्य आत्माक रूपमे देखैत छथि । हे चित्त ! अमृत ( अमरत्वक साधन शक्ति-साधना आ' तकर परिणाम सामरस्य )क अछैते ( ओकर सुविधा रहितहुँ ) तोँ विष ( -सदृश विषय ) गिड़ैत छह, रे आत्मन् ! तोँ पररस ( इतर पदार्थक रस )मे डुबाए मोहादिकेँ अभिन्न बनबैत छह । तोँ घर-पर एहन भावना की रखैत छह ? आब हम महामुद्राक आलिङ्गन कए सभ विषयवासनाक मूल उत्सहिकेँ मारि चिबा जाएब ( कुचित्तहिक विनाश कए लेब ) । सरह कहथि—की हमर पवित्र गोशाला ( इन्द्रियशाला ), शून्यक अधिष्ठान कायपीठ, बलद ( बड़द वा मलिन चित्त, तकर हेतु [illegible] चित्त )सँ दुष्ट बनि गेल ? नहि । हम एकसरे [illegible] ( क बन्धन )केँ [illegible] देब । रे चिन्मय चित्त ! स्वच्छन्द भए विहार करह ।

७ । भि० भा० को०—पृ० १



## शबरपाद

### १ ( २८ )

उँचा उँचा पावत तहिँ बसइ सबरी बाली ।
मोरङ्गिपीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥
उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाडा तोहोरि[१] ।
निअ घरिणी नामे सहज सुन्दारी ॥
नाना तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली ।
एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्रधारी ॥
तिअ धाउ खाट पाड़िला[२] सबरो महासुहे सेजि छाइली ।
सबरो भुजङ्ग नैरामणि[३] दारी पेम्ह राति पोहाइली ॥
हिअ ताँबोला महासुहे कापुर खाइ ।
सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ ॥
गुरुवाक् पुञ्छआ[४] बिन्ध णिअमण बाणेँ ।
एके शरसन्धानेँ बिन्धह बिन्धह परमणिबाणेँ ॥
उमत सबरो गरुआ रोषेँ[५] ।
गिरिवरसिहरसन्धि पइसन्ते सबरो लोड़िब कइसे ॥

× × ×

ऊँच ऊँच पर्वत ताहि बसइ शबरी बाला ।
मोर-अङ्ग-पुच्छ पहिरन शबरी ग्रीवमे गुञ्जामाला ॥
उन्मत्त शबर ! पागल शबर ! न कर गुली[६] गोहारि, तोहार ।
निज घरना नामें सहजसुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौलल रे ! गगनहि लागल डारि ।
अकेली शबरी ऐ वन घूमइ कर्णकुण्डलवज्र धारि ॥
त्रिधातु खाट पड़ल शबर महासुखें सेज ओछाओल ।
शबर भुजङ्ग नैरात्मा दारिका प्रेमें राति पोहाओल ॥

१ । बगीची । शास्त्री, सेन—तोहौरि
२ । सेन—पड़िला ३ । सेन—णइरामणि
४ । बगीची (पा०टि०) । शास्त्री, सेन—गुरुवाक पुञ्छआ ५ । सेन—गरु आस रोषे
६ । गुहामे लीन, सात्त्विक, आनन्दादि विकल्प

हिय-ताम्बूला महासुखें कपूर खाइ ।
सून नैरात्मा कण्ठे लए महासुखें राति पोहाइ ॥
गुरुवाक्-पुञ्ज्डें बेध निज मन बाणें ।
एके शरसन्धानें बेधह् बेधह् परमनिर्वाणे ॥
उन्मत्त शबर गरुअ रोषें ।
गिरिवर शिखर-सन्धि पैसंते शबर लडब कइसें ॥

ऊँच सुमेरुशिखरपर चिन्मयी ज्ञानमुद्रा बसैत छथि, हुनक ध्यान : नव-यौवना जकाँ कएल जाइत अछि। हुनक परिधान मयूर-पुच्छ सदृश चित्र-विचित्र भाव-विकल्प, ग्रीवामे गुञ्जामाला सदृश वर्णमाला । ओ शबरपादकेँ कहैत छथि—हे बताह शबर ! तों हमरा गुहा ( मेरुगुहा )मे लीन कए विकल्प दिशि तपबाक हेतु ( विग्रह धारण करबाक हेतु ) गोहारि नहि् करह् । हमरा तों अपन अभिन्न, आत्माभिन्न गृहणी बुझह्, हम नामहिसँ सहजसुन्दरी, त्रिपुर-सुन्दरी, स्वतः चिरन्तन सुन्दरि छी, हमरा तों ओही सहज शून्यरूपमे विहार करए दपह् । नाना अविद्याजनित दोपलभ ओहि सहस्रारस्थ ( महासुख-चक्रस्थ ) शून्यस्वरूप वृक्षमे लटकल अछि, ओहि सभसँ वस्तुतः ओ वृक्ष काँपल भए मौलाएल प्रतीत होएल (ध्यान देलासँ) । विषय-वासना कोनो सङ्ग नहि, (शुद्ध शून्यरूपा ) शबरी ज्ञानमुद्रा ( विमर्श स्वरूपिणी ) एकसरे एहि सुमेरुपर्वतवनमे ( चित्त-) मनकोपर झुलैत छथि; कानमे वक्रता ( चक्र वा प्रपञ्च )क प्रतीक कुण्डल तथा वज्र ( शिवक पुं-चिह्नक प्रतीक ) धारण कएने छथि[१] । काय, वाक् तथा चित्त एहि तीनू तत्त्वक खाटपर पड़ि शबर सामरस्यमे ( क हेतुएँ ) शय्या बिछाए लेल । भुजङ्गधारी शिवरूप बनल शबर अपन क्लेशविदारिणी, त्रिविधताप-संहारिणी अर्धाङ्गिनी एहि नैरात्माक प्रीति-लीलाक सङ्ग राति ( कुण्डलिनीयोगक अवधि ) बिताओल । हृदयक महाराग-ताम्बूलक आ' सामरस्यसौरभयुक्त कर्पूरक भोग कएल । शून्य-चिन्मयी महामुद्राकेँ कण्ठमे ( विशुद्धचक्रमे ) लगाए अद्वैत-भावसँ शिवरूपमे शक्तिसन्नद्ध भए राति बिताओल । हे बालयोगिन् ! गुरुवाक्-पुञ्जरूपी बाणसँ कुचित्तकेँ लक्ष्य कए वेध करह्, कुचित्तक विनाश करह्, तदनन्तर परम मोक्षक भेद एकहि संधान ( गुरुमन्त्रबल )सँ करह् । गुरुतर रोषें उन्मत्त शबर सहस्रारपर वा मेरुशिखरपर, वामदक्षिणक सन्धिस्थलमे प्रवेश कए परमपद, परमशिवत्व लाभ कएल । आब शबर मायासँ, विषय-वासनासँ, लड़ताह कोना ? आब तँ ओ मुक्त भए गेल छथि ।

१ । ऊपर 'एकपद' सँ परमशिवसँ विरहित्ता नहि वर्णित अछि, कारण ध० टी०मे 'वज्रगुरुपद्ज्ञानं निरत्य'देल अछि । ओ वज्र वा उपाय शिव ( द० शास्त्री भूमिका अनु० ४३ ) कामस बाहुत छथि । 'एकपदे'सँ केवल प्रपञ्चकल्पविरहितता बुझएबाक थिक ( द० ध० टी० ) ।



२ ( ५० )

गअणत गअणत तइला बाड़ी[१] हेञ्चे कुराड़ी ।
कण्ठे नैरामणि बालि जागन्ते उपाड़ी ॥
छाड़ु छाड़ु[२] माया मोहा विषम दुन्दोली ।
महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ सुणमेहेली ॥
हेरि से मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला ।
सुकड़[३] ए से[४] रे कपासु फुटिला ॥
तइला बाड़िर पासेँर जोह्नाबाड़ी उएला[५] ।
फिटेलि अन्धारि रे आकाशफुलिआ ॥
कङ्गुरि[६] पाकेला रे शबरा शबरि मातेला ।
अणुदिन[७] शबरो किम्पि न चेवइ महासुहेँ भोला ॥
चारि वासे गड़िला रे दिआ[८] चञ्चाली[९] ।
तहिँ तोलि शबरो डाह कएला कान्दइ सगुण शिआली ॥
मारिल भवमत्ता रे दह दिहे दिधलि बली ।
हेर से सबरो निरेबण भइला फिटिलि सबराली[१०] ॥

× × ×

गगन-गगनमे तेसर बाड़ी फिकलोरि कुठारी ।
कण्ठे नैरात्मा बाला जगैते उपाड़ी ॥
छाड़ छाड़ माया मोहा विषम द्वन्द्वता ।
महासुखे विलसैत शबर लए शून्यमहिला ॥
हेरि से मोर तेसर बाड़ी खसमे समतुला ।
सुकल है ! से रे ! कपास फुटला ॥
तेसर बाड़ीक पासे ज्योत्स्नाबाड़ी उगला ।
फाटल अन्हार रे ! आकाश फुलएला ॥

१ । सेन—बाड़ही २ । चर्गीको । शास्त्री, सेन—छाड़ छाड़
३ । चर्गीको । शास्त्री, सेन—सुकड़ ४ । सेन—एसे
५ । सेन—उएला ६ । चर्गीको । शास्त्री, सेन—कङ्गुचिना
७ । चर्गीको । शास्त्री, सेन—अणुदिन ८ । चर्गीको । शास्त्री, सेन—रेँ दिआँ ।
९ । चर्गीको—ध० टी० क प्रसङ्ग आ० दि०मे 'चञ्चाली' पाठ द्रष्टव्य ।
१० । चर्गीको । शास्त्री—सबराली

कङ्गुरि पाकल रे। शबरा शबरी मातल।
अनुदिन शबर किमपि [ किछु ] न देवइ महासुखेँ भोल [ र ] ॥
चारि वासे गड़ि रे ! देल चञ्चाली ( चण्डाली )।
तहँ तोलि शबर डाह कएला कानइ सगुण शृगाली ॥
मारल भवमत्ता रे ! दशदिशे दऽ देल बली [ लि ]।
हेरि से शबर निवृत्त भेल फाटल शबरालि [ शबरत्व ] ॥

शून्य, प्रतिशून्य एवं महाशून्यरूप तेसर बाड़ीकेँ चतुर्थशून्यरूप हृदयक कुठारसँ मिकझोरि कण्ठस्थिता महतीशक्ति, महामुद्रा ( गृहिणी ) शून्यताशक्ति जागृत भए उजाड़ि देल, वासनादिक वृक्षसभकेँ [ जे ओहि शून्यसभमे संलग्न छल, तकरा ] उखाड़ि फेकल। हे बालयोगिन् ! माया-मोह, विषम द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, त्यागह। देखह, आइ शबर शून्य (गगन) हृदया-महिला विशुद्धिकेँ अन्तर्लीन कए शिवरूपमे सामरस्य-सुखक भोग करैत छथि। तेसर बाड़ीकेँ, प्रकाश-प्रतिबिम्बसंमिलित महाशून्यकेँ, गगनक समतुल देखि हमर वज्रवत् सदृश आत्मज्ञान स्फुटित भेल। महाशून्यक निकटे ( केवल ) ओहि प्रकाशपुञ्जक अनुसन्धान भेल, अज्ञानान्धकार फाटि गेल, ई तहिना असंभव छल जेना आकाशकुसुम। चित्त परिपक्व भेल, प्रबुद्ध भेल ( कङ्गुरिफलसदृश ), ओकर आस्वाद कए सशक्ति शबर उन्मत्त छथि, परमानन्दरस-निर्भर छथि। अनुदिन सामरस्यमे डुबल, विभोर, शबरकेँ अन्य किछु नहि सुझैत छन्हि। ओहि चञ्चल विषय-वासनामय चित्तकेँ स्थिर कए चतुरानन्दमे निबलित कएल, ताहि दशामे शबर ओहि चित्तकेँ तौलल ( ओजन बुझल ) आ' पुनः ओकरा दग्ध कए निर्गुणमे मीलि गेलाह, सगुण शृगाली विक्षिप्त अछि [ विषयवती देवी खिन्ना छथि अनादर देखि ]। अरे ! भवमत्त जीव ( मायाबद्ध ) चित्तकेँ मारि, दशहु दिशामे ओकर बलि दए देल आ' आब सभक रहस्यक साक्षात्कार कए शबर स्वयं निर्गुणब्रह्मरूप, परमशिवरूप, भए गेलाह; शबरत्व, जीवात्मत्व आब चल गेल, परमात्मत्व, परमशिवत्व आबि गेल।

## लुइपाद

१ ( १ )

काआ तरुवर पञ्च वि डाल।
चञ्चल चीए पइठो काल ॥



दिढ़[1] करिअ महासुह परिमाण।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
सअल समाहिअ[2] काहि करिअइ।
सुख दुखेतेँ निचित मरिअइ ॥
एड़ि एउ[3] छान्दक बान्ध करण कपटेर[4] आस।
सुनुपाख भिति लेहु रे पास ॥
भणइ लुइ आम्हे झाणे दिठा।
धमण चमण बेणि पिण्डि[5] बइठा ॥

× × ×

काया तरुवर पाँचो डा़र।
चञ्चल चित्तेँ पैसल काल ॥
दृढ़ कए महासुख परिमाण।
लुइ भनइ गुरु पुछिअ ज्ञान ॥
सकल समाधितः की कृत होए ?
सुख-दुःखसँ निश्चित मृत होए ॥
एड़ि एहु छन्दक बन्ध करणकपटक आश।
सून-पक्ष-भिति लेहु रे पास ॥
भनइ लुइ हमे ध्याने दृष्टा।
धमण-चमण दुइ पीढ़ी बैठा ॥

शरीर वृक्षवत् अछि, पाँचो ज्ञानेन्द्रिय तकर शाखा-प्रशाखा, जाहि द्वारा चित्त चञ्चल रहला पर विषयवासना ओहिमे प्रवेश कए लैत अछि। मुक्तिक इच्छुएँ तेँ विषयवासना काले थिक। तेँ चित्तकेँ स्थिर राखब आवश्यक, तहि-सँ ओकर विकास, चिन्मयत्वप्राप्ति, सम्भव आ' बिनु चित्तक चिन्मयताक प्राणशक्तिकेँ शिवमे लीन करब सम्भव नहि, दोसर शब्दमे सामरस्य-सुखानु-भूतिक हेतु चित्तक शोधनपर, कुचित्त-विनाशपर, जोर दैत बालयोगिगणकेँ गुरुसँ रहस्य-साधना-पद्धति बुझबाक हेतु आदेश दैत छथि। हुनक कहब अछि जे आन-आन यौगिक प्रक्रियासँ कोनो फल नहि। ताहिसभसँ सुख-दुःखक

---

१। सेन—दिढ़ २। सेन—पहिअ ३। सेन—एउ
४। पगोकी। शास्त्री, सेन—करणक पाटेर ५। सेन—पाटिअ

चक्र बन्द होएब कठिन आ' तएइ चक्र सँ मृत्यु थिक। एहि चक्रक विनाशे त मुक्ति थिक। किन्तु एहि चक्रक विनाशक हेतु इन्द्रियक आहार-विषयसंभर्कें, ओहिपर लागल आशा-आकांक्षाकेँ, मनसँ ठेलए पड़त, शून्यस्वरूपिणी, गगनहृदया चितिक सङ्ग, अपरिणामिनी शक्तिक सङ्ग, तादात्म्य आवश्यक, हुनका भित्ति मानि ओहिपर ओङठब आवश्यक। तेँ लुइपादक अनुरोध अछि जे ओहि शून्यरूपिणीक भित्तिपर अवलम्बित होउ, ओहि भित्तिक सामीप्य बढ़ाउ, अन्तरङ्गता बढ़ाउ। ओ सिद्धाचार्य तँ स्वयं अनुभवप्राप्त छथि, नाड़ी-योग-साधन द्वारा ओ ई साक्षात् रूपमे देखने छथि जे इड़ा-पिङ्गला दूनूक मध्यभूता मज्झनाड़ीमे कुण्डलिनीशक्ति प्राणशक्तिक सङ्ग मीलि ऊपर कोना उठैत छथि तथा ओही सङ्गमभूता सुषुम्ना-नाड़ीक अन्तरङ्ग मज्झनाडीक द्वारा सिद्धक प्राणवायु महती शक्तिक रूपमे सहस्रारमे आनन्द, अनिर्वचनीय आत्म-शक्ति-मिथुनक आनन्द, दैत अछि। ओएह प्राणशक्तिक सङ्ग, कुण्डलिनीशक्तिक सङ्ग, प्रकाशरूप आत्माक सामरस्य अथवा, संक्षेपमे, शक्तिक सङ्ग शिवक सामरस्य तेँ महासुख थिक वा मुक्ति थिक।

## २ ( २९ )

भाव न होइ अभाव ण जाइ।  
अइस[1] संबोहेँ को पतिआइ॥  
लुइ भणइ वट दुलक्ख विणाणा।  
तिअ धाए विलसइ उह लागे णा॥  
जाहेर वाणचिह्नरुव ण जाणी।  
सो कइसे आगम वेएँ वखाणी॥  
काहेरे किस भणि मइ दिवि पिरिच्छा।  
उदकचान्द जिम साच न मिच्छा॥  
लुइ भणइ मइ भावइ[2] किस।  
जा लइ अच्छम ताहेर उह ण दिस॥

× × ×

भाव न होइ अभाव न जाइ।  
अइसन संबोधेँ के पतिआइ?

१। बगाका। शास्त्री, सेन—आइस  २। बगोको। शास्त्री, सेन—भाइव



लुइ भनइ बड़ दुर्लक्ष्य विज्ञाना।  
त्रिधातुएँ विलसइ, ऊह लागे ना॥  
जाहि (केर) वर्ण-चिह्नरूप न जानी।  
से कइसेँ आगमवेदेँ बखानी॥  
ककरा की भनि हम देब परीक्षा?  
उदकचान्द जिमि सत्य न मिथ्या॥  
लुइ भनइ हम भावी काहि।  
जे लए छी ताहि (केर) ऊह न देखि (छी)॥

परमसत्यक अस्तित्व अलक्षित अछि, कारण अछि विषयवासनाक ओभराहटि। अनरिसलो नीक जकाँ मनमे पैसैत नहि अछि। एहन ज्ञानकेँ के पतिआएत? लुइ कहैत छथि—वास्तविक तत्त्वक परिज्ञान वा अभिज्ञान दुष्प्राप्य थिक, साक्षात् रूपमे ओ परमशिवक परमा स्फुरत्ता, महासत्ता, प्रोथगम्या नहि। ओ महासत्ता, चिति वा अपरिणामिनी सत्ता वा महती शक्ति अपन क्रीडाक माध्यम रखने छथि काय, वाक् तथा चित्त, जकरा एक शब्दमे त्रिधातु वा त्रितत्त्व कहि सकैत छी। कोना क्रीडा करैत छथि, ताहि दिशि ऊह कहाँ होइत अछि? ओहि क्रीडाक जँ ऊहापोह भए जाए तँ आत्मा वा परमशिवक परिचय अनायास भेटि जाएत। संक्षेपमे, प्रत्यभिज्ञा उपलब्ध भए जाएत। एहि आत्मप्रत्यभिज्ञाक हेतु छोटछीन सूत्रक निर्देश असम्भव। परमा सत्ताक आकार कोनहु वर्ण-चिह्नक आकार रहितन्हि, तखन ने कोनहु सूत्रक निर्देशेँ हुनक प्राप्ति भए सकए? से तँ छन्हि नहि, तखन, हुनक वर्णन, आगम रहओ वा वेद, कए कोना सकत? केओ जँ प्रश्न पुछत तँ ओकर हृदयङ्गम उत्तर हम दए कोना सकबैक? अवाङ्मनसगोचरक स्वरूपकेँ शब्दसँ कोना व्यक्त कएल जाए? वस्तुतः परमात्मा वा वा परमशिव वा परमाशक्ति, जे कहल जाए, अव्याख्येय तत्त्व थिक। अधिकसँ अधिक ओहि प्रकाशक प्रतिबिम्ब मात्र देखल जा सकैत अछि। जेना जलमे चन्द्रक प्रतिबिम्बकेँ सत्यो कहि सकैत छी, यथार्थ चन्द्रक स्वरूप भासित होएबाक कारणेँ, असत्यो कहि सकैत छी, कारण ओ थिक तँ प्रतिबिम्बे, वास्तविक चन्द्र नहि, तहिना एहि जगतकेँ। परमशिवक स्वातन्त्र्य-शक्तिक स्फुरण वा परिणमन थिक ई विश्व, एहि विश्वरूपमे ओ अपनाकेँ आभासित करैत छथि, प्रतिबिम्बित करैत छथि, तेँ (तन्त्रक अनुसारेँ) ई जगत्

सत्ये थिक, हँ ओहि परमशिव वा परमात्माकेँ विश्वोत्तीर्ण माननाएँ तँ विश्व मिथ्ये बूझि पड़त, अधिकसँ अधिक प्रतिबिम्बे । लुइ कहैत छथि–तखन हम ई की करैत छी ? कोन शक्तिमे ओझराएल छी ? ओ सत्य छथि वा मिथ्या ? जनिका पकड़ने छी तनिक ऊह नहि होइत अछि, की करू किछु फुरैत नहि अछि ।

## गुण्डरीपाद

१ ( ४ )

तियड्डा चापी जोइनि दे अङ्कवाली ।
कमलकुलिश घाण्टि करहुँ विआली ॥
जोइनि तँइ बिनु खनहिँ न जीवमि ।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवमि ॥
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ ।
मणिकुले बहिआ ओड़िआणे समाअ ॥
सासु घरेँ घालि कोञ्चा ताल ।
चान्दसुजवेणि पखा फाल ॥
भणइ गुण्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा ।
नरअ[१] नारी माझेँ उभिल चीरा ।

× × ×

त्रिअड्डा[२] चापि योगिनि ! दे अङ्कपाली[३] ।
कमलकुलिश घसि करी विकाली ॥
योगिनि ! तोहि बिनु खनहु न जीबी ।
तोर मुख चूमि कमलरस पीबी ॥
क्षेपहु योगिनि लेप न जाए ।
मणिकुले बहि उड्डीयाने समाए ॥
सासु घरे घालि कोँचल (कोँचि) (लगाए)[४] ताल । १ ।
चान-सूर्ज दुइ पखा फार (इ) ॥

१। सेन—नरञ २। नाड़ीत्रय वा बिन्दुत्रयक अड्डा, योन्यग—चर्याकी (पा० टि०)
३। चर्याकी—सं० छाया
४। कोञ्चा = कोँचा वा कुञ्चिका ( द्रष्टव्य चर्याकी—सं० टीका )



भनइ गुण्डरी हमे कुन्दुरे[५] वीर ।
नरक नारी (क) माझे उड्डूत चीर ॥

हे योगिनि ! सहचरि मानवीशक्ते ! त्रिअड्डा ( त्रिवृत्ता ) ( योनि ) चापि अपन कोरमे बैसाउ, अथवा, हे महतीकुण्डलिनीशक्ते ! अहाँ नाड़ीत्रयकेँ चापि ओहिपर आरूढ़ भए अपन चिद्रूपता दान करू । कमल-कुलिश वा भग-लिङ्गक घर्षण कए अहाँ हमरा विकाली, कालरहित शक्तिक अभिन्न, बनाउ । हे योगिनि ! भैरवरूपमे हम अहाँक बिनु क्षणो भरि नहि जीबि सकी, अहाँक मुखक चुम्बन कए, ओकरे मधुरस पीबि, हम जीबि रहल छी । अहोपो बेला पर, योगिनी लिप्त नहि होथि ( स्वाधिष्ठानसँ मूलाधारो गेला पर ओ कुण्डलिनी-शक्ति शुद्धस्वरूपा रहबे करथि ) । ओ शक्ति मणिपूरमे बहैत उड्डीयानपीठमे पैसि जाइत छथि । हे शक्ते ! अहाँ सासु श्वासकेँ शरीर-गृहमे घायल कए मणिमूलनिरायेँ बन्द कए देल । आब चन्द्र-सूर्य ( इड़ा-पिङ्गला ) दूनूक पत्रकेँ दूर कए मध्य-विकास कराउ । गुण्डरीपाद कहैत छथि—हम कुन्दुरयोगमे ( द्वीन्द्रियसंयोगमे ) वीर छी, नर-नारी दूनूक मध्य उद्धृत चीर छी ( जाहिमे दूनू लीन भए जाए, तेहन सत्त्व, परमात्मरूप भए गेल छी ) ।

## आर्यदेवपाद

१ ( ३१ )

जहि मण इन्दिअ पवण[१] होइ णठा ।
ण जानमि अपा कहिँ गइ पइठा ॥
अकट करुणाडमरुलि बाजअ ।
आजदेव निरासे[२] राजअ[३] ॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ ।
चिअ विकरणे तहिँ टलि पइसअ[४] ॥
छाड़िअ भय घिण लोआचार ।
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर ॥

५। कुन्दुर योग = सामरस्य-योग । द्र० कुन्दुर योग = द्वीन्द्रिय-संयोग—ता० चौ०-सा०-धा० पृ० १२०
१। सेन—इन्दिअपवण ( छन्द, पर्यन्तकाक रक्षा ) २। सेन—णिरासे
३। चर्याका । शास्त्री, सेन—राजइ ( तुकक दृष्टिएँ अनुपयुक्त )
४। चर्याको । शास्त्री, सेन—पइसइ

आजदेवेँ सअल विआरिउ[५]।
भअ घिण दूर[६] निवारिउ॥

× × ×

जहँ मन इन्द्रिय पवन होइ नष्टा।
न जानी आत्मा कहँ गइ पइसा॥
अकट करुणा - डमरु बाजए।
आर्यदेव निरासेँ राजए॥
चन्द्रे चन्द्रकान्त जिमि प्रतिभासए।
चित्त विकरणे तहँ टरि [आ] पइसए॥
छाड़ि भय घृण [ा] लोकाचार।
देखैत देखैत सून विचार॥
आर्यदेवेँ सकल विचारल।
भय घृण [ा] दूर निवारल॥

जखन मन-इन्द्रिय-प्राणपवन सभ समाप्त भए जाए, तखन आत्मा कतए जा कए पैसल से बुझबामे नहि अबैत अछि। अद्भुत वा अखण्ड करुणामय शिवक डमरू बाजि रहल अछि, आर्यदेव आब सकल आशा-आकांक्षासँ विहीन शोभित भए रहल छथि, विशुद्ध आनन्दमे मग्न छथि, विषय-वासनासँ मुक्त छथि। चन्द्रक सम्पर्कसँ जेना चन्द्रकान्तमणि वा चन्द्रिका चकमक लगैत अछि तहिना विकल्पजाल विशुद्ध चित्तक सम्पर्कसँ शुभ्र प्रकाशरूप धारण कए लैत अछि; चित्त जखन चित्तिक रूपमे विकसित होइत अछि तखन ओकर विकारो विलीन भए तद्रूपे भए जाइत अछि। भय-घृणा-लोकाचार आदि (अष्टपाश)केँ छोड़ला पर शून्यस्वरूपिणीक विचरण (वा शून्यक विचार)क अनुभव करैत करैत आर्यदेवसँ सभ रहस्य विचारल गेल। आब हुनकामे भय-घृणादि नहि रहल, सभक निवारण भए गेल।

५। चगीको। शास्त्री, सेन—विइरिउ ( अग्रिम पाँतिक तुक नहि बैसए )
६। चगीको। शास्त्री, सेन—दुर ( छन्दोभङ्ग, अशुद्ध प्रतीत )



# दारिकपाद

## १ ( ३४ )

सुन करुण रे[१] अभिनचारेँ काअवाकचिअ[२]।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ॥
अलक्खलक्खणचित्ता महासुहेँ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाणवखाने।
अपइठानमहासुहलीलेँ दुलक्ख[३] परमनिवाणे॥
दुःखेँ सुखेँ एकु करिआ भुञ्जइ इन्दीजानी[४]।
स्वपरापर न चेवइ दारिकु सअलानुत्तर माणी[५]॥
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे[६] रे बाधा।
लुइपाअपसाएँ दारिक द्वादश भुअणेँ लधा॥

× × ×

सून - करुण रे ! अभिन्नाचारेँ कायवाक्चित्ते।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलेँ॥
अलक्ष्यलक्षणचित्ता महासुखेँ।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलेँ॥
की तुअ मन्त्रेँ की तुअ तन्त्रेँ की तुअ रे ! ध्यान-वखानेँ।
अप्रतिष्ठान - महासुखलीलेँ दुर्लक्ष्य - परमनिर्वाणे[७]॥
दुःखसुख एक कए भोगइ इन्द्रिय जानि [इन्द्रियज्ञानी]।
स्वपरापर न देखइ दारिक सकलानुत्तर मानि॥
राजा राजा राजा रे ! अवर राज मोहे रे ! बद्ध [ा]।
लुइपादप्रसादेँ दारिक द्वादश भुवने लब्ध [ा]॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—सुनकरुणरि २। सेन—चिअ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—दुलक्ख ४। चगीको, सेन—इन्दी जानी (णी)
५। चगीको। शास्त्री—सअलानुत्तरमाणी ६। चगीको। शास्त्री—मोहेरे
७। चगीको (सं० छाया)—'निर्वाणे'

अरे ! शून्य-करुणा अर्थात् शक्ति-शिव अभिन्न भए आचरण करैत कायवाक् चित्तमे विलास करैत छथि, शून्यस्वरूपिणीसे, परम कुल ( शक्ति )मे ( हमर ) अशब्दलक्षण चित्त सामरस्यसुखसँ लीन अछि। तोरा तन्त्रसँ की होएतह ? तन्त्रसँ की होएतह ? ध्यान-व्याख्यानसँ की होएतह ? अप्रतिष्ठ महासुखलीलाक सङ्ग दारिकपाद दुर्लक्ष्य परम मोक्षमे लीन भए इन्द्रियक असारतासँ परिचित भए, दुःखसुखकेँ एक बूझि ओकर भोग कए रहल छथि। समस्त जागतिक तत्वकेँ अनुसार परमशिवक आभासक रूपमे स्वीकृत कए दारिक आइ स्व-पर-अपर भेदक अनुभव नहि करैत छथि। अरे ! राजा, राजा, राजा—अन्य राजा ( साधक-चक्रवर्ती ) सभ तँ मोहमे जकड़ले रहि गेलाह, मुदा दारिकपाद गुरुलुइ-पादक प्रसादात् द्वादश भुवनपर विजय प्राप्त कएल, ई बड़ संतोषक विषय।

## डोम्बीपाद

१ ( १४ )

गङ्गा जउना माझेँ रे[1] बहइ नाइ[2]।
तहिँ बुड़िली मातङ्गीपोइआ[3] लीले पार करेइ॥
बाहतु डोम्बी बाहलो डोम्बी बाटत भइल उछारा।
सद्गुरुपाअपसाएँ[4] जाइब पुणु जिणउरा॥
पाञ्च केडुआल पडन्तेँ माङ्गे पिठत काच्छी बान्धी।
गअणदुखोलेँ[5] सिञ्चहु पाणी न पइसइ सान्धि॥
चन्द सूज दुइ चका सिठि संहार पुलिन्दा।
वाम दाहिण दुइ माग न चेवइ बाहतु छन्दा॥
कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छड़े पार करइ।
जो रथे चड़िला बाहवा ण जा [ न ] इ[6] कुलेँ कुल बुड़इ॥

× × ×

गङ्गा यमुना माझे रे ! बहइ नाव।
तहँ बुड़ली मातङ्गी डोमिनि लीलेँ पार करइ॥

१। चर्यापो। शास्त्री—माझेँ रे २। चर्यापो। शास्त्री—नाई
३। चर्यापो। शास्त्री—मातङ्गी पोइआ ४। चर्यापो। शास्त्री—पसाए। सेन—पएँ
५। चर्यापो—गअण दुखोलेँ। सेन—गअण-दुखोलेँ ६। सेन—जाआइ



खेवह डोमनि ! खेवह हे डोमिनि ! बाटे भेल उत्सूरा[7]।
सद्गुरु-पाद-प्रसादेँ जाएब पुनु जिन पुरा॥
पाँच करुआरि पड़ैते मार्गे ( वा माङि ), पीठे कच्छी बान्धि।
गगन-सेचनीएँ[8] सीँचह[9] ( फेकह ) पानी, न पइसए सन्धि॥
चन्द्र-सूर्य दुइ चक्का सृष्टिसंहार-पोलिन्दा[10]।
वाम दाहिन दुइ मार्ग न देखिअ खेवह छन्दा॥
कउड़ी न लेइ, बौड़ी न लेइ, सुच्छन्देँ पार करइ।
जे रथ चढ़ला ( किन्तु ) खेबा न जा ( न )इ कुलेँ कुल बुड़इ॥

गङ्गा-यमुना ( इड़ा-पिङ्गला )क मध्यमे हे बालयोगिन ! महानाड़ी ( सुषुम्नास्थ सूक्ष्म नाड़ी ) एक प्राणवाहक नौका बहि रहल अछि। ओहि स्थानसे अन्तःस्था महाविद्या-शक्ति वा चाण्डलिनी ( मातङ्गी = चाण्डालिनी[11] ) मातङ्गीरूपा डोमिनी ( पोइआ = नीच स्त्री[12] ) ( शरीरक निम्न प्रान्तसँ उठनिहारि शक्ति चण्डाली वा ) कुण्डलिनी अपन लीला देखाए साधकपुत्रसकलकेँ ऊर्ध्व-गामी ( पारगामी ) बनबैत छथि। हे डोमिनि ! महामुद्रे ! प्राणनौकाकेँ, चित्त-नौकाकेँ खेवह, बाटमे आब जीवनक साँझ भेल जाइत अछि, सद्गुरु-चरण-प्रसादेँ पुनः जिनपुर ( परलोक ) जेबाक अछि, पञ्च-उपदेशरूप कर्णधार मार्गमे वा माझिपर रखैत, पीठमे कच्छी ( वा रस्सी ) बान्हि शून्यरूप सेचनीसँ नौकास्थ जलकेँ उपछि फेकह, जाहिसँ ओ जल मध्यनाड़ी ( नाड़ी-हृदय-सन्धि )मे पैसए नहि ( अर्थात् विषयवासना प्राण-नौका वा चित्त-नौकामे अँटकि नहि सकए, से देखह, अविरहिँ 'उपछि फेकह )। चन्द्र-सूर्य-मण्डल-चक्र दूनू सृष्टि-संहारक प्रतीक, ओहि नौकाक मध्यस्थ दुइ गोट मस्तूल ( वा खुट्टी थिक ) ताहि प्रकारेँ प्राण-वाहमे लीन बुझह जेँ एहि दूनू चक्र-सम्बन्धी ( इड़ा-पिङ्गला रूप ) दूनू मार्ग दिशि ध्यान नहि जा सकह। हे बालयोगिन् ! तेहन व्यक्ति, महामुद्रा ( ऊपर सम्बोधिता ) पार करओनिहारि छथुन्ह ते आनन्दे आनन्द,

७। उत्सूर—Evening Twilight-आप्टे सं० श० को० P. 103 तथा चर्यापो पा०टि०
८। दुखोल—सेचनी [ चर्यापो—एही गीतक पा० टि० ] ९। चर्यापो—पं० छायामे 'वइंचह', 'सिंच' दूनू समानार्थक [उपछब अर्थमे ]; सिंच = सीँचह [ मै० रूप )
१०। पुलिन्दा—पोलिन्दा, इहठाम चर्यापो ओएह गीत पा० टि० तथा आप्टे सं० शब्द-कोश P. 349 'पोलिन्द' शब्द = मस्तूल। ११। सं० शब्दकोश पृ० ४ ३ [ मै० बौद्धक 'चण्डाली' ] १२। चर्यापो—ओएह गीत—पा० टि०

इनका हेतु एकोटा कौड़ी-चौड़ी पारिश्रमिक खर्च नहि करबाक काज। ओ मातङ्गी-शक्ति महाविशा स्वच्छन्द भए आनन्दसँ पार करैत आएल छथि। एहि प्रकारेँ पारगमन करबाक हेतु जे एहि चित्त-प्राण-नौकापर सवार होएताह, किन्तु ओकर वाइसँ परिचित नहि रहताह, से देह-देहहिमे[13] डूबि जएताह वा (जेना 'फूल' मानि कहल गेल) इतस्ततः तटहिपर डूबि जएताह[14]।

## कुक्कुरीपाद

१ ( २ )

दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ[1]।
रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ॥
आङ्गन घरपण[2] सुन भो बिआती।
कानेट चौरे निल अधराती॥
सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ।
कानेट चौरे निल का गइ[न] मागअ॥
दिवसइ बहुडी काडइ[3] डरे भाअ।
राति भइले कामरु जाअ॥
अइसन चर्य्या कुक्कुरीपाएँ गाइड़।
कोड़ि मझेँ एकु हिअहि समाइड़॥

× × ×

दुली दुहि पीठ धारण न जाए।
रुइक (वृक्षक) तेतरि कुम्भीर खाए॥
आङन घरपन (गृहाङ्गन) सुन हे बिआती (प्रसूती)।
कानेट (कर्णफूल) चौरे लेल अधराती॥
ससुरा निंद गेल बहुरी जागए।
कानेट चोरे लेल का गति माङए॥
दिवसे बहुरी काड़ [काड़ कौआ] क डरे भागए।
राति भेले कामरु जाए॥

१३। सं० टो० तथा आर्थार इत्यत्र 'देहेऽपि कथितं फूलं ...' त० भ० पृ० ५३०
१४। चर्याको पृ० ४६ पं० ठि०
१। चर्याको। शास्त्री, सेन—आइ। २। सेन—घरपण। ३। चर्याको, सेन—काडइ



अइसन चर्या कुक्कुरीपादेँ गाओल।
कोटि माझे एक हिअहि न समाएल॥

दुली शब्दक दू अर्थ—कच्छपी[4] आ इथाकार, लीन होएबाक स्थान 'महासुखकमल'[5] वा सहस्रार, वस्तुतः कच्छपीओहुकेँ पेँट बाहर-भीतरक दृष्टिएँ इथकार कहि सकैत छी। अस्तु। प्रथम पंक्तिक तात्पर्य एतबे अछि जे सहस्रारक अमृत दुहि (दूनूक मध्य सामरस्य स्थापित कए मिथुनामृतज्ञान दुहि) पुनः ओकरा मणिपीठमे धारण नहि कएल जाए सकैत अछि (कुण्डलिनी-उत्थान द्वारा सामरस्य-मुक्तिक पश्चात् प्रत्यावर्त्तनक प्रश्न नहि उठैत अछि)। कायवृक्षक चक्र आ' अम्मत तेतरि सदृश (क) चित्तकेँ, कुंभीर जन्तु वा कुम्भक प्राणायाम खा रहैत अछि। हे जगत्-प्रसूति महामुद्रे! सुनह, अर्धरात्रिमे (कुण्डलिनी-उत्थान-कालमे) कर्णाभरण (कर्ण द्वारा ग्राह्य नाद-पवन) सामरस्य चोरा लेलक, ससुर सदृश स्वरितादि श्वास अवरुद्ध (निद्रित) भए गेल, वधू-सदृश योगिनीगण जागलि रहए। जखन कर्णाभरण नाद-पवन चोरे लए लेलक, तखन पुनः ककरासँ माङब? दिनमे वधू काउ (काउकौआहु)सँ डेराए जाइत छथि, राति भेने प्रियतमकेँ कामरु पहुँचबैत छथिन्ह वा कामरूप जाइत छथि (कामसाधनार्थ) अर्थात् प्राणक आरोहक क्रममे कुण्डलिनी-महामुद्रा कालपुरुषसँ त्रस्त रहथि, किन्तु सहस्रारस्थ भए पुनः शिव-संयोगमे उन्मुखी होथि। एहन चर्या कुक्कुरीपाद गबैत छथि, कोटिमे एकहुक हृदयमे ई रहस्य पैसल नहि।

२ ( २० )

हाँउ निरासी खमण भतारे[1]।
मोहोर बिगोआ कहण न जाइ॥
फेटलिउ गो माए अन्तउरि चाहि।
जा एथु चाहाम सो एथु नाहि॥
पहिल बिआण मोर बासनपूड़ा।
नाड़ि बिआरन्ते सेव बापुड़ा॥

४। दुली—कच्छपी—हिं० शब्दकोश
५। इथाकारं वहिनत्र लीनं गतं महासुखकमलं दुलि इति संध्यार्थकेतो बोद्धव्यं।
नागोको सं० टी०
१। चर्याको, सेन। शास्त्री—भतारे

जाएजौवण मोर भइलेसि पूरा।
मूल निखणि[1] बाप संघारा॥
भणथि कुक्कुरीपा ए भव थिरा।
जो एथु बुझइ सो एथु बीरा॥

× × ×

हम निराली खमन भतारे।
हमर विशोएवा कहल न जाइ॥
फाटल गे माए! अन्तः पुरी देखि।
जे एत देखी से एत नाहि॥
पहिल बिआन मोर बासनापुर (?)।
नाड़ी बिचारैते सेहो बेचारा॥
जान यौवन मोर भेल पूरा।
मूल छाधि बाप संहारा॥
भनथि कुक्कुरीपा ई भव थीरा।
जे एत बुझइ से एत बीरा॥

हम (भगवती महामुद्रा) व्यापक परमब्रह्मस्वरूपिणी रहबाक कारणेँ निरासक्ति छी, शून्यस्वरूप मन वा चित् (चित्तो तेँ चित् बनि जाइत अछि) हमर भर्त्ता, स्वतः हम चिच्छक्ति वा चिति। हमर प्राणचित्ता के से कहल नहि जाए गे मैया! हम अन्तःपुर (साधकक चित्त-जगत्) दिशि ताकि ओकर विषय-वासनाकेँ तोड़ि देल। जेना अहाँ एहि जगतकेँ देखैत छी, तेना अछि नहि, अर्थात् असत् अछि वाह्यतः एवं सत् अछि मूला शक्तिक आभास होएबाक कारणेँ। हमर पहिल बिआनमे वासनानगरी ई देह प्रसूत भेल, नाड़ी सभपर विचार कएला सँ वासनानगरी देहो दबनीये। ज्ञान-यौवन वा उद्दाम यौवन हमर पूर भेल, चितिरूपमे (अक्र-) मूलमे पैसि ओकरा चिन्हल, वासनादिजनक चित्तक संहार (विनाश) कएल। कुक्करीपा कहैत छथि— ई जगत् स्थिरे अछि, जे ई रहस्य नीक जकाँ बुझैत अछि से वीर अछि (जगत् स्थिर, स्थिरा नित्याक आभास होएबाक कारणेँ)।

एहिठाम महामुद्राक उक्ति अछि वा कविक, से समस्त गीतमे सुस्पष्ट नहि अछि। ई अनुसन्धान किछु उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे अन्तिम चारू

1। अगोको। शास्त्री, सेन—नखलि।



पंक्ति कविक उक्ति अछि, अवशिष्ट महामुद्राक। किन्तु, अधिक समीचीन बुझना जाइत अछि ई अनुमान जे समग्र गीत कविक अभिन्ना प्राणशक्तिक उक्ति थिक, तेँ "मूल...............संघारा"। वस्तुतः सिद्धपाद चित्तकक संहार कएल, किन्तु हुनक अभिन्नारूपमे शक्तियो तेना बाजि सकैत छथि।

३ (४८)[1]

कुलिशाब्जयुद्धं प्रविष्टाः।
समतायोगस्य सैनिकसमूहाः॥ १॥
विषयेन्द्रियग्रामानहन्।
शून्यताराजो महासुखनामा॥ ध्रुवपद॥
तूर्यशब्दः शङ्खध्वनिर् अप्रतिहतनादं नदति।
मोहभवबलानि दूरातीतानि॥ २॥
सुखपुरं शिखरे संस्थाप्य सर्वम् आकृष्टं [संगृहीतं वा]।
अंगुलिम् ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा कुक्कुरीपादो वदति॥ ३॥
अयं त्रैलोक्ये महासुखेन जयति।
तत्त्वस्यार्थं शब्दान्तरेण कुक्कुरीपादेन कथितं॥ ४॥

× × ×

कुलिश - कमल - युद्ध पइसल।
समतायोगक सैनिक समूह॥ १॥
विषयेन्द्रिय - ग्राम मारल।
शून्यताराज महासुखनामा॥ ध्रुवपद॥
तूर्य शब्द शङ्खध्वनि अप्रतिहतनाद बाजए।
मोहभवबल दूर बीतल॥ २॥
सुखपुर शिखरे राखि सब आकृष्ट (संगृहीत) (भेल)।
अङ्गुलि उठाए कुक्कुरीपाद कहथि॥ ३॥
एहि त्रैलोक्यमे महासुखेँ जय हो।
तत्त्वक अर्थ शब्दान्तरेँ कुक्कुरीपादेँ कथित हो॥ ४॥

1। "The Carya with its commentary, lost in its original form, has been retranslated here from the Tib. version appended at the end of the work." बगोको—भू० टि० (पृ० ५५७)

वज्र (लिङ्ग वा शिवक प्रतीक) आ' कमल (योनि वा शक्तिक प्रतीक) एहि दुनूक सामरस्ययोगमे समस्त काय, वाक् चित्त तत्पर भए गेल। शिव-शक्तिक सामरस्यक बलसँ विषयग्राहक इन्द्रियसभक व्यापार नष्ट कए देल गेल। तुरीयनाद, विजयक शङ्खध्वनि जकाँ, अप्रतिहतरूपमे झङ्कृत भए रहल अछि। आब संसारक सामर्थ्य, मोहमायाक पराक्रम दूर चल गेल, आब समस्त विषय-वासनासभ सहस्रार (मेरुशिखर) पर, सामरस्यक भूमिकामे, अन्तर्लीन भए गेल, सभ वासना ओही चक्रमे आकृष्ट भए विलीन भए गेल। आङुर उठाए कुक्कुरीपाद कहैत छथि—त्रैलोक्यक आभास-दोषसभ सामरस्यसँ विलन भए गेल। ओ एहि सामरस्यानन्दक जयकार करैत छथि, एहि सङ्ग रहलासँ त्रैलोक्यो श्रेयस्कर। ओ (कुक्कुरीपाद) तत्त्वहिक विषयकेँ दोसर शब्दमे (अपन ढङ्गसँ) कहैत छथि।

## भुसुकुपाद

६ ( ६ )

काहेरे घिणि मेलि अच्छहु कीस।
वेढि(ढ़ि)ल हाक पड़अ चौदीस॥
अपणा मांसें हरिणा वैरी।
खनह न छाडअ भुसुक अहेरि(री)॥
तिन न चछुपइ हरिणा पिवइ न पाणी।
हरिणा हरिणीर निलअ न जाणी॥
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो।
ए वण च्छाडी होहु भान्तो॥
तरंगते[1] हरिणार खुर न दीसइ[2]।
भुसुक भणइ मूढ़हिअहि न पइसइ॥

× × ×

काहि चिनि मीलि रहु कीदश।
वेढ़ल हाक पड़ए चहु दीश॥
अपना मासें हरिणा वैरी।
खनहु न छाड़ए भुसुकु अहेरी (आखेट)॥

१। चर्यो, सेन—तरंगेन्ते २। चर्यो। शास्त्री, सेन—दीसअ



तृण न छुबइ हरिणा पिबइ न पानी।
हरिणा हरिणीक निलय न जानी (आनइ)॥
हरिणी बोलए सुन हरिणा तोँ।
ऐ वन छाड़ि होहु भान्तो॥
तरङ्गमे हरिणाक खुर न देखो।
भुसुकु भनइ मूढ़-हिअहि न पैसइ॥

ककरा (कोन तत्त्वकेँ) पकड़ू, ककरा घृणाक दृष्टिएँ देखि छोड़ू? किछु नहि फुरैत अछि। हम केवल छुब्ध छी, चारू कात विषय-वासनासँ घेरल छी। वृत्ति पड़ैत अछि, विषयसभ मूर्तिमान् भए जोर-जोरसँ बाजि रहल अछि—एकर आत्मा केँ मारह (नष्ट करह)। हमर चित्त-हरिण अपन हानि, अपनहि मांसक लोभमे पड़ि अर्थात् वासना-पूर्त्तिक लोभमे पड़ि, कए रहल अछि, तेँ अपन शत्रु अपने अछि, वासनापूर्त्तिक लोभमे रहने चित्तक विकास संभव नहि। किन्तु भुसुकुपादक आत्मा ओकर ज्ञान नहि छोड़ैत, ओ ओकर दोष-विनाशपर लागल अछि; महती शक्ति निराकारमहामयीशक्तिरूपमे हरिणीक सदृश छथि। एहि हरिणीकेँ अपन प्रियतम सिद्धक चित्तहरिणक व्याकुलता देखल नहि जाइत छन्हि, ओ बुझैत छथि जे हमर चित्त-हरिण सामान्य हरिण नहि जे खड़-पातक आहार करैत अछि आ' स्थूल जलसँ अपनाकेँ परितृप्त कए सकैत अछि, किन्तु ओ हरिण अपन परिचय नहि रखैत अछि। ओ शून्यहृदया जगदम्बाक अधिष्ठानसँ अनभिज्ञ अछि, जे ओकरासँ दूर नहि छथि। ई स्थिति देखि ओ शून्यस्वरूपिणी जगन्मयी ओकरा कहैत छथिन्ह-हे साधकक चित्त हरिण! हे हमर प्रियतम! सुनह, तोँ आब एहि विषयवासनाक जंगल-झाड़मे अपनाकेँ नहि ओझराबह, एतएसँ निकलि चलह, चलह, हमरा सङ्ग सहस्रारवनमे विचरह। तात्पर्य एतबे जे चित्त ऊपर उठि, विकसित भए, चितिक अभिन्न बनि, शिवरूप बनि जाए। जगदम्बा चितिरूपा छथि, चित्त विकसित भेलापर चितिक अभिन्न बनि जाइत अछि आ' फलतः साधकक आत्मा, शिवात्माक पदवी प्राप्त करैत अछि। एहि प्रक्रियाकेँ ध्यानमे राखि चिति अपरिणामिनीशक्ति साधकक मनकेँ अपनामे रमाए, अपन अभिन्न बनाए, सहस्रारस्थ शिवरूपमे परिणत देखए चाहैत छथि।

अस्तु, ई आशय सिद्धक चित्तकेँ जखन बुझबाक योग्य भए गेलैक तखन ओ बड़ वेगसँ विषयसँ भागल आ' महती शक्तिक अभिन्न (अन्तरङ्ग) बनि शिवस्वरूपताकेँ प्राप्त कएलक। कोना? ई रहस्य तँ मूढ़क हृदयमे पैसि नहि सकैत अछि, भुसुकुपादक सएह धारणा छन्हि।

२ ( २१ )

निसि अन्धारी मुसअ चारा ।
अमिअभखअ मुसा करअ आहारा ॥
मार रे जोइआ मुसा पवणा ।
जेण तुटअ अवणागवणा ॥
भवविन्दारअ मुसा खणअ गाती ।
चञ्चल मुसा कलिआँ नाशक थाती ॥
काल मुसा उह ण बाण ।
गअणे उठि करअ अमिअ पाण[1] ॥
ताव से मुसा उञ्चल पाञ्चल ।
सद्गुरुबोहेँ करह सो निच्चल ॥
जबेँ मुसाएर चार तुटअ ।
भुसुकु भणअ तबेँ बान्धन फिटअ ॥

× × ×

निशि अन्हारी मूसक चारा ।
अमृत-भक्षक मूसा करए आहारा ॥
मार रे ! योगिआ मूसा पवना ।
जहिसँ टूटए आवागमना ॥
भव-विदारक मूसा खुनए गर्त्ता ।
चञ्चल मूसा जाए ( कओरेँ ) थाती ॥
काल मूसा, तनि न वर्ण ।
गगने उठि करए अमृतपान ॥
तावत् से मूसा चकस-पाकस [चञ्चल] ।
सद्गुरुबोधेँ करह सोइ निश्चल ॥
जबे मूसाकेर चार टूटए ।
भुसुकु भनए तबे बन्धन टूटए ॥

चित्त-मूस चतुर्थ प्रहरान्तमे, अर्थात् प्राणवायुरूप सूर्यक अस्त भेलापर [ षट्चक्रयोगक क्रममे ] चरैत चरैत सहस्रारस्थ मधुक पान करैत अछि। किन्तु

[1]. बगीको। शास्त्री, सेन—चरअ अमिअ पाए



एहि यौगिक प्रक्रियामे स्थायित्व नहि, अर्थात् स्थायी रूपमे अमृत-पान करबाक हेतु, सामरस्य-सुख भोग करबाक हेतु, कुचित्त-विनाश आवश्यक। एही विषयकेँ सिद्धगण चित्त-विनाश शब्देँ सूचित करने छथि। आ' एही दृष्टिएँ प्रस्तुत सिद्ध कवि बालयोगीसभकेँ प्राण-पवन वा चित्त-मूसकेँ मारए कहैत छथि। विषयवासनासँ मलिन चित्तक विनाशहिसँ वा तदभिन्न प्राणक नाशहिसँ सामरस्य-मुक्ति सम्भव, जन्म-मरणक विच्छेद सम्भव। कवि कहैत छथि—ई जे विषयानुरक्त चित्त से यद्यपि षट्चक्र-साधन द्वारा क्षणक हेतु सामरस्यक ईषद्भोग करैत अछि; किन्तु सामान्यतया पुनः विषयमे लपटाए अपनहिसँ खाधि कोड़ैत अछि; वस्तुतः ओ थिक भव-विदारक, किन्तु लागल रहैत अछि खाधि कोड़बामे, अपन पतनक आयासमे। चञ्चल रहि चित्त-मूस नाशक भण्डार विषयवासनाक भोग करैत अछि, आहार करैत अछि, किन्तु ओएह स्थिर भए, समाधिस्थ भए, महाकालरूप भए जाइत अछि, जकर कोनो वर्ण-स्वरूप नहि, ताहि रूपमे तँ ओ शून्यगगनमे विचरण करैत अछि आ' सामरस्यक अमृतपान करैत अछि, शक्तिक अन्तरङ्ग बनि। जा' धरि ई स्थिरता नहि आएल रहैत अछि ता' धरि ओकर छटपटी कहल नहि जाए, ओ मानू चकस-पाकस करैत अछि। एहि छटपटीकेँ कोना दूर कएल जाए, सामरस्यक आनन्द कोना भेटए, चित्त ब्रह्ममयीमे लीन भए शिवरूपताकेँ कोना पाबए? एहिसभक व्यावहारिक रहस्य सद्गुरुअहिसँ ज्ञातव्य। संक्षेपमे एतबे बुझह [ हे बालयोगिन् ] जे जखन एहि चित्त-मूसक संचार [ ऊपर उठब, पुनः नीचा खसब ] रुकि जएतह, तखन समस्त बन्धन टूटि जेतह।

३ ( २३ )

जइ तुम्हे भुसुकु अहेरि जाइबेँ मारिहसि पञ्चजणा ।
नलिणीवन पइसन्ते होहिसि एकुमणा ॥
जीवन्ते भेला बिहाणि[1] मएल रअणि ।
[ण]हण[2] बिणुमाँसे भुसुकु पद्मवण पइसहि णि ॥
माआजाल पसरि उरे[3] बाँधेलि[4] माआहरिणी ।
सद्गुरुबोहेँ बुझि रे कासु कहिनि[5] ॥

१। बगीको। शास्त्री, सेन—विहङ्कि
२। बगीको। शास्त्री, सेन—हथ
३। बगीको, सेन—रुरिउ रे
४। बगीको। शास्त्री—बधेलि
५। बगीको। शास्त्री, सेन—कहिनि

× × ×

जं तों मुमुक्षु आखेट जएबह, मारिहह पञ्चजना ।
नलिनीवन पैसैते होइहह एकमना ॥
जीवित भेला बिहान, मुइल रजनी ।
[अ] हण बिनु मांसें भुसुकु पद्मवन पैसिहह नहि ॥
मायाजाल पसरि उरे बांधलि मायाहरिणी ।
सद्गुरुबोधें बूझल रे ! [का] ककर कहिनी ॥

हे मुमुक्षु ! जँ तोँ कुचित्तक आखेटार्थ जइहह तँ शब्दस्पर्शादि पञ्चतन्मात्रा आ तत्सम्बन्धी पञ्च-अनुभूतिक विनाश पहिने कए लिहह, सहस्रारदल-प्रवेशसँ पूर्व एकमना भए आराध्यक अन्तरङ्ग बनि जइहह, तखन कोनो गप्प । आब तोहरा ज्ञानोदय भए गेलह, अज्ञान-निशा समाप्त भए गेलह । निहत चित्त-मृगक मांस उपहार लए अर्थात् कुचित्त-विनाश कए ओकर मूलभूता शक्तिक सङ्ग हे मुमुक्षु ! तोँ सहस्रार पैसिहह, प्राणवायुकेँ षट्चक्र-भेद करैत-करैत सहस्रारमे मिलबिहह । संसारक मायाजाल पसरल अछि । एहि जालमे ओझराए साधक महामाया-हरिणीकेँ पर्यन्त सीमित दृष्टिएँ हृदयमे रखैत छथि, रूप-कल्पना द्वारा स्वार्थवशात् । सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ हमरा ई बुझबाक योग्य भए गेल अछि जे ककरा की स्थिति छल । कहबाक अभिप्राय ई जे संसारक विषयवासनाक रूपमे मायाजाल पसरल अछि, ताहिमे नहि फँसि, चित्तशक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गता स्थापित कएल जाए, सएह थिक चरम लक्ष्य ।

४ ( २७ )

अधराति भर कमल विकसिउ ।
बतिस जोइणी तसु अङ्ग उह्लसिउ[1] ॥
चालिअ ससहर[2] मागे अवधूइ ।
रअणहु सहजे कहेइ ॥
चालिअ ससहर गउ णिवाणे ।
कमलिनि कमल वहइ पणालें ॥
विरमानन्द विलक्षण सुध ।
जो एथु बुझइ सो एथु बुध ॥

1. पाठा० । शास्त्री, सेन—उह्लसिउ 2. पाठा० । शास्त्री, सेन—ससहर



मुसुकु भणइ मइ बुझिअ मेलें ।
सहजानन्द महासुह लीलें ॥

× × ×

अधराति भरि कमल विकसल ।
बत्तीस योगिनी तसु अङ्ग उल्लसल ॥
चालित शशधर मार्गे अवधूती ।
रतनहु सहजे कहइ ( अवगूत ) ॥
चालित शशधर गेल निर्वाणेँ ।
कमलिनि कमल वहइ प्रनालेँ ॥
विरमानन्द विलक्षण शुद्ध ।
जे एत (ए) बुझइ से एत ( ए ) बुद्ध ॥
भुसुकु भनइ हम बुझल मेलेँ ।
सहजानन्द महासुखलीलेँ ॥

चतुर्थाश्रित प्रहर ( चतुर्थी सन्ध्या ) मे, अर्थात् प्राणसूर्यक अस्तमित भेलापर सहस्रार विकसित भेल ( अथवा निशामे जाए सहस्रार विकसित भेल )। योगिनीक सदृश,महाविद्याक सङ्ग सामीप्यभाव अगओनिहारि देवीक सदृश, बत्तीसो नाड़ी ओहि सहस्रारक अङ्गकेँ उल्लसित कएलक,आनन्दोच्छ्वसित कएलक । प्राणचन्द्र अवधूती वा सुषुम्ना नाड़ीमे ऊपर उठए लागल आ' सहज वा सामरस्यक अनुभूति-रत्नक परिचय हमरा कहए लागल, अर्थात् हमरा ओ अनुभव होअए लागल । समुत्थित ई प्राण-चन्द्र वा चित्त-चन्द्र निर्वाणप्राप्त भेल अर्थात् मुक्त भए गेल, कमलिनी अर्थात् कुण्डलिनी वा प्राणशक्ति सहस्रार-कमलमे प्रवेश कएल, प्रकृष्ट महानाड़ी द्वारा । तदनुक आनन्द विलक्षण तथा विशुद्ध सच्चिन्मय । जे एतए ई रहस्य बुझए सएह अछि प्रबुद्ध । हमहुँ तँ जीव ( प्राण )-आत्मा ( परमात्मा )क मेलक वा शक्ति-शिवक संयोगहिक, सहज सामरस्यहिक, प्रसादात् एहि रहस्यसँ परिचित भेल छी । अर्थात् बिनु ओहि सामरस्यानुभूतिक आनन्दक साक्षात् अनुभव प्राप्त भेने ई संभव नहि अछि (एहिठाम जीवन्मुक्तिपर प्रकाश अछि )।

५ ( ३० )

करुणा मेह निरन्तर फरिआ।
भावाभाव द्वन्दल दलिआ॥
उइत्ता गअण माझें अदभूआ।
पेख रे भुसुकु सहजसरुआ॥
जासु सुनन्ते तुट्टइ इन्दिआल।
निहुए[1] णिअ मन देअ[2] उलास॥
विसअ विशुद्धें मइ बुझिअ आनन्दे।
गअणह जिमि उजोलि चान्दे॥
ए तैलोए एत वि सारा[3]।
जोइ भुसुकु फेटइ अन्धकारा॥

× × ×

करुणा मेघ निरन्तर फरए।
भावाभाव द्वन्द्वल दलए॥
उदित गगन माझे अद्भुता।
पेख रे! भुसुकु सहजस्वरूपा॥
जसु सुनइते टूटइ इन्द्रियजाल (इन्द्रजाल)।
निभृत निज मन दिअए उल्लास॥
विषय विशुद्धें हम बुझी आनन्दे।
गगने जिमि इजोरि चन्दे॥
ऐ त्रैलोक्ये एते विसारा।
योगि भुसुकु फाड़इ अन्धकारा॥

परमा सत्ताक भाव वा अभाव, एहन विकल्पकेँ दलित कए, हृदयमे करुणा-मेघक उत्पत्ति भेल अर्थात् शिवक करुणामय स्वरूपक स्फुरण भेल। शून्य-गगनमे अद्भुत सहज-स्वरूप-प्रकाशक उदय भेल, एहन प्रतीत भेल। अर्थात् शून्य-स्वरूपिणी शक्तिक सङ्ग सम्मिलित शिवक सामरस्यमय स्वरूपक वा विमर्श-सम्मिलित-प्रकाशक साक्षात्कार भेल। हे भुसुकु! एहि स्वरूपकेँ

१। नगोको। शास्त्री, सेन—निहुरे २। नगोको। शास्त्री, सेन—दे
३। नगोको। शास्त्री—ए त विसारा। सेन—एतवि सारा



नीक जकाँ देखह, चिन्हह। ओ तँ एहन प्रकाश अछि जकर वर्णन सुनलासँ इन्द्रियजाल वा मायाजाल टूटि जएतह, आ मन निभृत भए जेतह, अनायास उल्लसित। विषय-वासना आब शुद्ध सत् आनन्दरूपमे परिणत भेल अछि, कोना लगैत अछि तँ जेना आकाशमे चन्द्रोदय भए गेल हो, चन्द्रमाक इजोरिया जकाँ ओहि असीम परमशिवक सहज-प्रकाश चित्त-जगतकेँ व्याप्त कएने अछि। त्रैलोक तँ कहल, मुदा एहि त्रैलोक्यक मायाजालमे पड़ि लोक सभ किछु बिसरि जाइत अछि, किन्तु भुसुकु अज्ञान-तिमिरकेँ फाड़ि देल, तत्त्वज्ञानी बनि गेलाह।

६ ( ४१ )

आइए अणुअना ए जग रे भांतिएँ सो पडिहाइ।
राजसाप देखि जो चमकिइ साँचे कि ताक बोड़ो खाइ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ[1] लोहा।
आइस[2] सभावेँ जइ जग बुझसि तुटइ वासना[3] तोरा॥
मरुमरीचि गन्धव[व]नअरी[4] दापणपतिबिम्बु जइसा।
वातावर्तें सो दिढ़ भइआ अपेँ पाथर जइसा॥
बान्धिसुआ जिम केलि करइ खेलइ बहुविह खेला।
बालुआतेलेँ ससर सिंगे आकाशफुलिला॥
राउतु भणइ कट भुसुकु भणइ कट सअला अइस सहाव।
जइ तो मूढ़ा अच्छसि भान्ती पुच्छतु सद्गुरुपाव॥

× × ×

आदि [मे] अनुत्पन्न [।] ई जग रे! भ्रान्तिए[*] से प्रतिभाति।
रज्जु-साप देखि जे चमकइ सत्ये कि ताक बोड़ो खाइ?
अकट योगिआ रे न कर हाथ लोलाह।
अइसन स्वभावेँ[*] यदि जग बुझसि टुटए वासना तोरा॥
मरुमरीचि गन्धर्[व]नगरी दर्पण प्रतिबिम्ब जइसन।
वातावर्त्तें[*] से दृढ़ भेला अपें पाथर जइसन॥

१। नगोको। शास्त्री, सेन—हथा २। नगोको, सेन। शास्त्री—अइस
३। नगोको। शास्त्री, सेन—वासणा ४। नगोको। शास्त्री—गन्धनइरी

बन्ध्या सुता जिमि केलि करइ खेलइ बहुविह खेला ।
बालुका तेलें शशक सिंघें आकाश फुलएला ॥
राउत भनइ ओह ! भुसुकु भनइ ओह ! सकला अइसन स्वभाव ।
यदि तों मूढ़ा छह [तों] भ्रान्त [ ? ] पुछह सद्गुरुपाद ॥

हे बालयोगिन ! वस्तुतः आदिमे जे अनुत्पन्न छल एहन जगतकेँ भ्रान्तिक कारणे तों यथार्थ बुझि स्वीकार करैत छह । तोहरा असत्य जगत् सत्य प्रतिभासित होइत छह, भ्रमक कारणेँ । किन्तु बुझह जे रज्जुसर्प देखि जे डरेँ चौँकि उठैत छथि तनिका वस्तुतः ओ साप खाए तँ नहि लैत अछि । मिथ्या धारणा मात्र रहैत अछि जे ओ साप खा लेत, तहिना एहि जगतकेँ यथार्थ मानि निरन्तर भीति-दुःखसँ व्याकुल रहब भ्रमात्मक परिणाम थिक । एहि जगतसँ किछु होयएवाला नहि, एकर डर की ? ई अकट गप हम कहैत छिअह । एहि भवसागरक क्षार विषय-जलकेँ स्पर्शो नहि करह, केवल हाथ [मन] केँ नोनछराइन, विषयी, करब होएतह । ई भवसागर किछु नहि सत्ता रखैत अछि, विच्छित्तिक आडम्बरात्मक माया मात्र थिक । एहि रूपमे जँ तों संसारकेँ स्वीकार करबह, तँ अनायास विषय-वासना छुटि जएतह । ई बुझह जे ई संसार तहिना किछु काजक नहि जेना मरुभूमिमे पानि पीबाक इच्छा केवल कष्टकारक, ई कपोलकल्पित सुखदुःखमय संसार तहिना मिथ्या जेना आकाशमे गन्धर्वनगरी बसल, अथवा जेना दर्पणमे प्रतिबिम्बित वस्तु [ वस्तु भासित होइत, किन्तु वस्तु नहि, छाया-प्रतिबिम्ब मात्र ] । ई जगत् परमा सत्ताक आभास मात्र, छाया मात्र, वस्तुतः अपनामे ई किछु नहि, इएह आशय । बाला-बर्हीमे पड़ल पाथर कहिओ थिर भेल ? बन्ध्याक पुत्री कहिओ जन्म लए खेलाएल ? बालुसँ कहिओ तेल बनल ? खढ़ियाकेँ कहिओ सिंघ उपजलैक ? आकाशमे कहिओ कोनो फूल फुलाएल ? एहि सभ प्रश्नक उत्तर एकेटा होएत—कहिओ नहि । तहिना ई जगत् कहिओ यथार्थ तत्त्वक रूपमे उत्पन्न भेल, से नहि । राउत ( सिद्ध राजकुमार ) ई अद्भुत विषय कहैत छथुन्ह, भुसुकु ई अद्भुत विषय कहैत छथुन्ह जे सभ जातिक विषयकेँ, वस्तुकेँ, एही रूपमे बुझह । तथापि जँ तों मूढ़ छह तँ कोनहु सद्गुरुसँ सम्यक जिज्ञासा करह ।



७ ( ४३ )

सहजमहातरु फरिअ ए तेलोए ।
खसमसभावे रे वाणत मुका कोए[१] ॥
जिम जले पाणिआ टलिआ भेद न जाअ ।
तिम मणरअणा रे समरसे गअण समाअ ॥
जासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि ।
आइ अनुअणा रे जामभरण भाव नाहि ॥
भुसुकु भणइ कट राउतु भणइ कट सअला एह सहाव ।
जाइ ण आवइ रे ण तहिं भावाभाव ॥

× × ×

सहज महातरु फरए रे ! त्रैलोकये ।
खसम-स्वभावें रे ! वानतः मुक्ता कोए ॥
जिमि जले पानिआ खसि भेद न जाए ।
तिमि मनरतना रे ! समरसे गगन समाए ॥
जसु नाहि आत्मा तसु परक काहि ।
आदि अनुत्पन्ना रे ! जन्ममरण-भाव नाहि ॥
भुसुकु भनइ कुत, राउत भनइ कुत, सकला (इ) एह स्वभाव ।
जाइ न आवइ रे ! न तहँ भावाभाव ॥

हे बालयोगिन् ! एहि समस्त त्रैलोक्यमे एक सहजरूप, सामरस्यमय शिव-शक्तिक अद्वयरूप, महान् वृक्ष जकाँ पसरल अछि, ओही महान् वृक्षक त्रिभुवनक फलरूप थिक ई याबतो सृष्टि, मायाजाल । ओ आकाशसदृश स्वभावे, शून्यता-स्वरूपे, गगनहृदयस्वभावे, तँ स्वातन्त्र्य वा विमर्शशक्ति थिक परमात्मा वा परमशिवाद्वैतक एहि शक्तिकेँ, परमात्माक स्वभाव ( विमर्शहि स्वभावे ) केँ पकड़लासँ मुक्ति भेटब सुनिश्चित, किन्तु दौर्भाग्यवशात् बड़ थोड़ व्यक्ति तत्त्वज्ञानी भए सकलाह, अधिकांश ज्ञानविहीन उपासना वा धार्मिक अन्य चर्या कए बन्धनमले रहलाह । जेना जलाशयमे एक लोटा जल देलासँ व्यापक-व्याप्य जलक भेद नहि अनुभूत हो, तहिना मनोरत्न सामरस्यपूर्ण शून्य-स्वरूप शिव-शक्तिमे मीलि ( पैसि ) गेलासँ तद्रूपे भए जाइत अछि । कहलो तँ गेल अछि जे साधनाक चरमदशामे चित्त चिति ( चित्-शक्ति )मे परिणत भए जाइत अछि ।

---

१ । पाठभेद । शास्त्री— वाणत मुका कोए । सेन— वाणतकाकोए ।

एहि अवस्थाकेँ प्राप्त करबाक हेतु आत्मविकास आवश्यक, जकरा आत्मबोध नहि, तकरा परतत्त्वबोधे कोना हो ? भुसुकु कहैत छथि जे एहि त्रैलोक्यक यथार्थ स्वभाव बुझह आदिमे अनुत्पन्नता, तखन जन्म मरणादिक सद्भाव कोना ? एहन भासित होएब भ्रान्ति मात्र थिक। तेँ ई निश्चित रूपेँ बुझह जे जगतक इएह उक्त स्वभाव थिक, एहि अनुत्पन्नतामे भावाभावक, आवागमनक, प्रश्ने नहि उठैत अछि, रावत भुसुकुक इएह धारणा छन्हि।

८ ( ४९ )

वाजणाव पाड़ी पँउआ खालेँ वाहिउ।
अदअ बङ्गाले क्लेश लुडिउ॥
आजि भुसु[कु][1] बङ्गाली भइली।
णिअ घरिणी चण्डाली लेली॥
डहिअ[2] पञ्चपाटण[3] इंदिविसआ णठा।
ण जानमि चिअ मोर कहिँ गइ पइठा॥
सोण रुअ मोर किम्पि ण थाकिउ।
निअपरिवारे महासुहे थाकिउ॥
चउकोडि भण्डार मोर लइआ सेस।
जीवन्ते मइलेँ नाहि विशेष॥

× × ×

वज्रनाव पाड़ि पदुमा-हृदमे खेवल।
अद्वय-बङ्गालेँ क्लेश लूटल॥
आजु भुसुकु बङ्गाली भेल।
निज घरनी चण्डाली लेल॥
दग्ध पञ्चपत्तन, इन्द्रिय-विषया नष्टा।
न जानी चित्त मोर कत गइ (जा) पइसा॥
सोन-रूप मोर किछु न रहल।
निज परिवारे महासुखे रहल॥
चउकोटि भण्डार मोर लए शेष।
जीवत मुइने नाहि विशेष॥

१। चर्यागीको। शास्त्री—भुसु। सेन—भुसुकु २। चर्यागीको। शास्त्री—दहिअ। सेन—डहि जो ३। चर्यागीको। शास्त्री—पञ्चपाटण। सेन—पञ्च पाटण



वज्र लिङ्गक प्रतीक थिक आ' पद्म योनिक। तेँ, प्रथम पंक्तिक आशय अछि— लिङ्गरूप नौका योनिरूप धारमे खसाए खेबए लगलहुँ, अथवा महाशक्तिकेँ, कुण्डलिनीशक्तिकेँ, सहस्रारस्थ शिवक सङ्ग मिलाए, शिवरूप भए, आत्मा हमर तत्समाने, मैथुनसहरी, आनन्दातिरेकक, निर्विकल्पक आनन्दक, अनुभव कएलक। शिवशक्ति-अद्वयक उपयुक्त बङ्गालक कारणेँ अनेक दुःख लूटल, विषयभोगक क्रमेँ बड़ बड़ कष्ट सहल। आब कोनो कष्ट नहि। आइ हम शुद्ध बङ्गाली ( ब—शिव, अङ्गाली—अभिन्न, तेँ शिवक अभिन्न ) भए गेल छी। आइ स्थूल साधकरूपमे हम डोमिनिकेँ अपन घरनी बनाए लेने छी आ' शिवात्मरूपमे परमाशक्तिकेँ कुण्डलिनीक स्वरूपमे अपन अन्तरङ्ग बनाए लेने छी। आइ पञ्चपत्तन [ पञ्चस्कन्धाश्रित[4] अहङ्कार-ममकारादिक संवेदना ] दग्ध भए गेल, इन्द्रियविषय शब्दस्पर्शादि नष्ट भए गेल। हमर चित्तपर आब ओहिसभक कोनो प्रभाव नहि, न जाने ओ आइ कतए जाए पैसल अछि ( वस्तुतः शून्यस्वरूप शक्तिमे अन्तर्लीन अछि किन्तु हुनक आकार कोनो सीमित नहि, जे स्थूल रूपमे ज्ञातव्य भए सकए, तेँ नहि जानी )। आब हमरा हेतु सोन-रूप किछु मूल्यवान नहि, दूनूसँ एके रङ्ग तटस्थ छी अर्थात् शून्य ( सोन ) आ' आकार ( रूप ) दूनूमे कोनहु एकमे अधिक आसक्त छी, एहन प्रश्न नहि अछि; शून्य-आकार दूनूक संकल्प-विकल्पक लय भए गेल अछि, केवल प्रकाशानन्दचिन्मयक, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञानक एकतानताक, बोध भए रहल अछि। एहि असीम सामरस्यक आनन्दक अनुभूति लए अनतह नहि जाए पड़ल, अपन परिवारहिमे भेटि गेल, अपन शक्ति डोमिनिक अनुग्रहसँ। आब हमर विषयवासनाक चतुष्कल भण्डारे समाप्त अछि, आब हमरा की सताओत ? आब जेहने जीअब तेहने मरण ( जीवन्मुक्तक अवस्थामे स्वतः आनन्दे आनन्द )।

काह्नु पाद ( कृष्णाचार्य )

१ ( ७ )

आलिएँ कालिएँ बाट रुन्धेला।
ता देखि काह्नु विमन भइला॥

४। पञ्चस्कन्ध=रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आ' विज्ञान—ना० बौ० भा० ए० पृ० ५८

काहु कहिँ गइ करिब निवास ।
जे मनगोअर सो उआस ॥
से तिनि से तिनि तिनि हो भिन्ना ।
भणइ काहु भव परिच्छिन्ना ॥
जे जे आइला ते ते गेला ।
अवणागवणे काहु विमन भइला ॥
हेरि से काहि निअडि जिनउर वसइ[1] ।
भणइ काहु मो हिअहि न पइसइ ॥

× × ×

आलिएँ कालिएँ बाट रोधल ।
से देखि काहु विमन भेल ॥
काहु कत गइ (आ) करब निवास ।
जे मनगोचर से उदास ॥
से तीनि से तीनि तीनि हो भिन्ना ।
भनइ काहु भव परिच्छिन्ना ॥
जे जे अएला से से गेला ।
आवागमनें काहु विमन भेल ॥
हेरि से काहु निअर जिनपुर वसइ ।
भनइ काहु मोहि हिअहि न पइसइ ॥

इड़ा-पिङ्गला सँ सुषुम्नाख्य मध्यनाड़ीगत कुण्डलिनीशक्तिक उद्‌र्ध्वगमनमे रोधके, बाधके, भए गेल अछि, से देखि हम, काहुपाद, विमन भए गेल छी अथवा ( जेना टीकामे, ठीक विपरीत अछि ) कुण्डलिनी-शक्तिक विकेन्द्रित होएबाक बाट रुद्ध अछि, कारण हुनक सन्मार्ग मध्यनाड़ीकेँ दूनू दिशिसँ इड़ा-पिङ्गला दबने अछि, तेँ काह्न विमन, विशिष्टमन । आब काहु कतए आए बसताह ? उत्तर बसताह से अलक्ष्य, अवाङ्‌मनोगोचर । जे मनोगोचर जागतिक तत्त्व सेसभ उदास जकाँ लगैत अछि, ओहिमे कोना ढुकू ? ओ तीनि, काय-वाक्-चित्त, आ' ई तीनि, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल, भिन्नताक

१ । सेन । शास्त्री—वसइ



सूचक थिक, एहन गप्प विश्वक परिच्छिन्न स्वभावक दृष्टिएँ अछि । विश्वक मायाजाल अनित्य वस्तु, जे जन्मल सभ चल गेल । काह्न एहि आवागमनसँ विक्षुब्ध छथि । ई आवागमन कोना छुटए ? मुक्तिसँ । से मुक्ति-प्रतीक जिनपुर तँ लगहिमे अछि; केवल हृदयमे पैसए, चित्त-विकास हो, ततबे आवश्यक ।

२ (९)

एवंकार दृढ़[1] बाखोड़ मोड्डिउ ।
विविह विआपक बान्धण तोड़िउ ॥
काहु[2] विलसअ आसवमाता ।
सहजनलिनीवन पइसि निविता ॥
जिम जिम करिणा करिणिरेँ रिसअ ।
तिम तिम तथतामअगल वरिसअ ॥
छड़गइ सअल सहावे सूध ।
भावाभाव वलाग न[3] छुध ॥
दशबलरअण हरिअ दशदिसेँ ।
[अ]विद्याकरिकुँ दम अकिलेसेँ ॥

× × ×

एवंकार दृढ़ खम्हा मोड़ल ।
विविध विआपक बन्धन तोड़ल ॥
काहु विलसए आसवमत्त ( । ) ।
सहजनलिनीवन पैसि निवृत्त ( । ) ॥
जिमि जिमि करिणा करिणीए रिसए ।
तिमि तिमि तथता मदकल वरिसए ॥
षड्गति सकल स्वभावेँ शुद्ध ।
भावाभाव बालाग्रें न छुत ( क्षुब्ध ) ॥
दशबलरत्न हरल दशदिसे (सँ) ।
अविद्याकरिकेँ दम (ह) अक्लेसेँ (सँ) ॥

१ । सेन—दृढ २ । सेन—काह्न
३ । चर्याको, सेन । शास्त्री—बलाग न [ ( ]
४ । माल = केश ( आप्टे सं० अं० को० P. 390 द्रष्टव्य )

'एवं' मन्त्ररूपी वा शक्ति-शिवरूपी चन्द्रसूर्यनाडीक दृढ़ स्तम्भकेँ कीलित कए ( मर्दित कए ) दृढ़वस्थ कएल। बाह्य विविध व्यापक बन्धनस्तम्भकेँ तोड़ल। आब कान्हु मद्य पीबि उन्मत्त वा सामरस्य-सुखानुभवसँ विभोर छथि, ओहि सहजानन्द-सामरस्यरूप, शक्तिसङ्गसहज,कमलिनी-वनमे विलास कए रहल छथि। संसारसँ आइ निवृत्त छथि। जेना जेना चित्तगजेन्द्र शून्यस्वरूपिणी महा-शक्तिकरिणीसँ रिलिआ रिलिआ सटैत अछि, तेना तेना शिवत्वक आनन्द-मदधारा बरिसैत अछि। देवासुरप्रभृति षड्गतिशील जीवलाक स्वभावतः शुद्ध अछि, केवल मायाक कारणेँ अशुद्ध। आब हमरा मायाक स्वरूप स्पष्ट भए गेल अछि आ' तेँ भाव-अभावक समस्यासँ केशाग्रो भरि स्पृष्ट वा क्षुब्ध नहि छी। अविद्या तेँ हमर दशबल[४]-रत्न (शिवत्वबल)केँ हरण कए लेने छल। अविद्याहिक कारणेँ ओ दशहु दिशामे छिड़िआ गेल छल। किन्तु आब हम ओहिपर विजय प्राप्त कएने छी। तोहरहुसँ इएह अनुरोध अछि जे अविद्या-हथिनीकेँ सुलभ रीतिएँ, सात्त्विक भोगमय साधनसँ दमन करह। अविद्या-हथिनीसँ काज नहि चलतह, चित्त-गजकेँ विद्याकरिणीक अन्तरङ्ग बनबह, सएह आशय।

३ ( १० )

नगरबाहिरि रे डोम्बि तोहोरि कुड़िआ।
छोइ छोइ जाइ सो बाह्मनाड़िआ॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब मो[१] साङ्ग।
निघिन काह्नु कापालि जोइ लांग॥
एक सो पदुमा चौषठ्ठी पाखुड़ी।
तहिँ चड़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥
हा लो डोम्बि तो पुछमि॰ सद्भावेँ।
आइससि जासि डोम्बि काहरि नावेँ॥
तान्ति विकणअ डोम्बि अवरना[२] चाङ्गेड़ा[३]।
तोहोर अन्तरे छाड़ि नड़पेड़ा[४]॥

---

४। दश पारिभाषिक बल—श॰ क॰—पृ॰ ८९९ ('बल' शब्द)।
१। चर्यागीती। शास्त्री, सेन—म २। चर्यागीती, सेन—अवर ना
३। सेन—चङ्गता ४। सेन—नड़पेडा



तु लो डोम्बी हाँउ कपाली।
तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि[५] हाड़ेर माली॥
सरवर भाञ्जिअ डोम्बी खाअ मोलाण।
मारमि डोम्बि लेमि पराण॥

× × ×

नगर बाहर हे! डोमिनि! तोहर कुटिआ।
छुबि छुबि जाइ से ब्रह्मनाड़िआ॥
हे रे डोमिनि! तोहि सम करब हम सङ्ग।
निर्घृण कान्हु कपाली योगी नङ्ग॥
एक से पदुमा चौँसठि पंखुड़ी।
ताहि चढ़ि नाचए डोमिनि बापुड़ी॥
हे हे डोमिनि! तोहि पुछी सद्भावेँ।
आवह जाह डोमिनि! ककर नावेँ॥
ताँति बेचह डोमिनि! आवरण (?) चङ्गेरा।
तोहर अन्तरे छाड़ी नटपेटा॥
तोँ हे डोमिनि! हम कपाली।
तोहर अन्तरे हम लहल हाड़क माली॥
सरवर भाङि डोमिनि खाए मृणाल।
मारी डोमिनि लौ परान॥

हे डोमिनि! नगरसँ बाहर तोहर खोपड़ी छह, अथवा हे महाशक्ते! शरीरक स्थूल परिधिसँ बाहर, सूक्ष्म रूपमे अहाँक वास्तविक सत्ता अछि; कुण्डलिनीरूपमे अहाँकेँ ब्रह्मनाड़ी छुबि छुबि जाइत अछि। हे महामुद्रे! हम अहाँक सङ्ग रतिलीन होएब शिवरूपमे, आइ कान्ह अष्टपाश-विमुक्त छथि, स्वतः घृणा नहि, कापालिकक रूपमे अघोर छथि, नग्न छथि, विषयवासनासँ अनावृत छथि। एक ओ मूलाधारचक्रक पद्म, तकर चौँसठि दल, ताहिपर मानू कुण्डलिनीरूपमे महामुद्रा डोमिनी माता नाच करैत छथि। हे महामुद्रे! अहाँकेँ हम सद्भावेँ पुछैत छी—'अहाँ कोन नावसँ सहस्रारपर चढ़ैत आइत

---

५। सेन—घलिलि

छी आ' ओतएसँ बहैत उतरैत छी ?' कोनो स्थूल संवाहक तत्त्व नहि अछि; चित्त मात्र माध्यम अछि, सएह आशय। हे डोमिनि ! हे महामुद्रे ! अहाँक कांज अछि ओंभराहटि-पतनक रूपमे मूल्य लए मायाक ताँति बेचब आ आवरणरूप चङेरा बेचब। अहाँक निकट भेलासँ हम नटपेटा छोड़ि दी, जाहिसँ उपकरण लए मायामय विश्वमे नट-लीला करैत छलहुँ। अहाँ डोमिनि [अस्पृश्या, अस्वक्गोचरा] छी। हम कापालिक छी, अहाँक समीप भए हम अस्थिमाला धारण कए नेने छी। प्राणशक्ति पशुक शरीरक अन्तश्चक्ररूप सरोवरकेँ तोड़ि, ओहिमे पैसि मृणालसदृश ब्रह्मनाड़ीक भोग करैत छथि। आब हम कुण्डलिनीक (नाड़ीक मूलभूत व्यापक) तत्त्वकेँ अपनामे ग्रहण कए आत्मामे मिलाए लेब, सभक मूलशक्तिकेँ आत्मकेन्द्रित कए शिवत्वलाभ करब।

४ ( ११ )

नाड़िशक्ति दिढ़ धरिअ खाटे[1]।
अनहा डमरु बाजइ बीरनादे ॥
काह्न कपाली योगी पइठ अचारे।
देहनअरी विहरइ एकाकारे ॥
आलि कालि घण्टा नेउर चरणे।
रवि शशी कुण्डल किउ आभरणे ॥
राग द्वेष[2] मोह लाइअ छार।
परम मोख लवए मुत्तिहार[3] ॥
मारिअ शासु नणन्द घरे शाली।
माअ मारिआ काह्न भइल कवाली ॥

× × ×

नाड़िशक्ति दढ़ धरी खाटे।
अनहद डमरु बाजइ बीरनादे ॥
काह्नु कपाली योगी पइस आचरे।
देहुनगरी विहरइ एकाकारे ॥

१। पगीको। शास्त्री—खाटे। सेन—खटे २। पगीको। शास्त्री—देष। सेन—द्वेश
३। पगीको, सेन। शास्त्री—मुत्ताहार



आलि कालि घण्टा नेउर चरणे।
रवि-शशि-कुण्डल कएल आभरणे ॥
रागद्वेषमोह लेपिकेँ छार।
परम मोक्ष ल[व]ए मुक्तिहार [मुक्ताहार] ॥
मारि सासु ननंद [ननदि] घरे दयाली।
माए मारि कान्ह भेल कपाली ॥

ब्रह्मनाड़ी आदि [षट्चक्रनिरूपणक प्रसङ्गमे कहल] नाड़ीसभक अन्तःस्थित समस्त शक्तिकेँ, कुण्डलिनी वा प्राणशक्तिकेँ, चित्तक आधार बनाए, ओहिपर ओकरहि मनसा पड़ि रहल छी। एहि मननक क्रममे अनाहत-ध्वनिरूप डमरुक निनाद 'सोऽहं' ओरसँ सुनि रहल छी। कापालिक काह्न योगी आब तेहन आचारक अनुसरण करैत छथि जाहिमे देहे देवालय थिक। एहि आलयमे, देहनगरीमे, मानू ओ एकरूपमे, एक तानमे, समाधिस्थ भए सामरस्यसुखोपभोग करैत विहार कए रहल छथि। ओहि साधनाक क्रममे इडा-पिङ्गलागत पवनक सन-सन शब्द, ओहि नाड़ीयुगलमध्य ऊर्ध्वसंचारिणी कुण्डलिनीशक्तिक नूपुर-ध्वनि अछि, शरीरस्थ सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल ओहि महतीशक्तिक ताटङ्कद्वय थिक। एहि प्रकारक अनुभूतिक प्रसादात् काह्न सांसारिक विषयवासनासभकेँ दग्ध कए राख बनाए देल। आब जँ ओहिसभक अनुभवो होइत छन्हि तँ दमित, प्रशान्त, शीतल संवेदना मात्रक रूपमे, एहन सन जेना अपन समस्त ज्वालाकेँ छाड़ि निःशक्ति भए ओ केवल शरीरमे (भस्म जकाँ) लागल अछि। आब कान्ह बड़ बहुमूल्य हार, मुक्ताहार, लाभ कएने छथि, जे थिक परममोक्षहार, मुक्तिहार। जीवात्मा (स्त्री)क सासु-ननदि जकाँ रहल आ' ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-सुखसाधनसभकेँ तँ काह्न दमित कए समाप्त कए देल जे सभक मूलभूता मलिन-सत्त्वप्रधाना मायहुकेँ, समस्त विषयवासनाक जननी मायहुकेँ आइ समाप्त कए देल, हुनक प्रपञ्चजालसँ अपगत भए ओहिसँ अप्रभावित छथि (शुद्ध सत्त्वप्रधाना महामायामे लीन भए गेल छथि, स्वतः परम शिवरूप, सच्चिदानन्दरूप बनि गेल छथि)।

५ ( १२ )

करुणा पिहाड़ि खेलहुँ नअबल।
सद्गुरुबोहेँ जितेल भवबल ॥

फीटउ दुआ मादेसि रे ठाकुर।
उआरिउएसें काह्न णिअड[1] जिनउर॥
पहिलें तोडिआ बडिआ मारिउ[2]।
गअवरें तोडिआ पाञ्चजना घालिउ॥
मतिएँ ठाकुरक परिनिविता।
अवश करिआ भवबल जिता॥
भणइ काह्नु अम्हे[3] भाल दान देहुँ।
चउषट्ठि कोठा गुणिआ लेहुँ॥

× × ×

करुणा पीढ़ी खेलाइ नयबल।
सद्गुरुबोधें जीतल भवबल॥
काटल द्वैत, मातु रे! ठाकुर।
उपकारि-चदेसें काह्न निअर जिनपुर॥
पहिने तोड़ि दत्तिका मारल।
गजबरे तोड़ि पाञ्चजन घालल॥
मतिएँ (मन्त्रिएँ) ठाकुरक परिनिवृत्त।
अवश कए भवबल जित (ल)॥
भनइ काह्नु, हम भल दान दी।
चौंसठि कोठा गुनि लए ली॥

आइ काह्न करुणामय स्वाधिष्ठानचित्तकें समस्त जागतिक प्रपञ्चक सतरञ्जक घर जकाँ मानि, ओहि घरसभमे जागतिक अनुभवकें नहि राखि, आध्यात्मिक तत्त्वसभकें उपविष्ट कए अपूर्व लोकोत्तर विलास कए रहल छथि, जेहिए जकाँ सद्गुरुदत्त ज्ञानसँ अपन आध्यात्मिक शक्ति शरीरस्थ तत्त्वसभक द्वारा सांसारिक वासनासभकें जीति जगद्दल प्राप्त कए नेने छथि। आइ द्वैतत्त्व छिन्न भए गेल, अद्वैत-भावना अङ्कुरित पुष्पित भेल। रे अविद्याग्रस्त चित्त! तों आइ मातु भए गेलह, तोहर प्रशक्ति समाप्त। उपकारीक उद्देश्यें तकैत तकैत

१। चगीको—निअर २। चगीको—मराडिउ। सेन—मराडिउ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—आम्हे



काह्नक ध्यान अकस्मात् एहिपर जाइत छन्हि जे महान् स्वर्ग (आनन्दमय लोकोत्तर जगत्) निकटहिमे अछि। जगत्प्रपञ्च-सतरञ्जक जालपर कोना विजय प्राप्त कएल, तकरा सूचित करबाक हेतु काह्न ओकर प्रक्रिया देखबैत छथि। पहिने (आठो) प्यादा कटल अर्थात् घृणाशङ्कादि अष्टपाश कें काटल। समाधिस्थ चित्तगज फील गोटीकें दुकाए अन्य पात्र (घोड़ा आदि) वा ज्ञानेन्द्रिय विषय-चित्तगज फील सभकें काटल। मन्त्री वा मन्त्रशास्त्रीय बुद्धि द्वारा तँ अविद्याग्रस्तचित्तराज स्वयं मातु भए गेलाह, अचल भए गेलाह। आब ओहि कलुषमय चित्तहिकें जखन मातु कए लेल तखन जगद्दलाभक गप्पे कोन? ओ तँ अनायास सिद्ध भए गेल। काह्न कहैत छथि—हे महागुरु! चौंसठि दलक पद्म(चक्र) हम अहाँक सेवामे प्रस्तुत कएने छी, जे अहाँक निवास-मन्दिर अछि, तकर हमर अनुदान बुझू।

६( १३ )

तिशरण णावी किअ अठकुमारी।
निअ देह करुण शुन मेहेरी[1]॥
तरिआ भवजलधि जिम करि माअ सुइना।
मझ बेणी तरङ्ग म[2] मुनिआ॥
पञ्च तथागत किअ केडुआल।
बाहअ काअ काहिल[3] मात्राजाल॥
गन्ध परस रस जइसों तइसों।
निंद बिहुने सुइना जइसो॥
चिअकण्णहार सुणत माझें[4]।
चलिल काह्न महासुहसाझें॥

× × ×

त्रिशरण नावी कृत अठकुमारी।
निज देह करुणाशून्यमेहेली (महिला)॥

१। चगीको। शास्त्री—करुणाशून्यमे हेरी। सेन—करुणाशून मेहेली।
२। चगीको। शास्त्री—तरङ्गत ३। चगीको। शास्त्री—काहिल ण
४। चगीको। शास्त्री—सुणतमाझें

तीर्ण भवजलधि जिमि करि माया सपना ।
माभ वेणी तरङ्ग हम मुनि ॥
पञ्चतथागतकृत करुआरि ।
बाहए काय काह्णिल मायाजाल ॥
गन्ध-परस-रस जइसन तइसन ।
निंद-बिहीने सपना जइसन ॥
चित्तकर्णधार शून्यता-मार्गे ( माड़ि पर ) ।
चलल काह्नु महासुख सङ्गे ॥

काय, वाक्, चित्त इएह तीनू तँ साधनाक साधन अछि, एहि तीनू शरणकेँ नौका मानि प्राणशक्तिकेँ ऊपर खेबए लगलहुँ, एहि नौकहिक प्रसादात् समस्त अष्ट-कुमारी (ब्राह्मी आदि वा शिवक अष्टमूर्तिक सहचरी अष्टप्रकृति पञ्चमहाभूतार्कचन्द्र-यजमान ) केँ, अपन देहहिमे, करुणा-शून्यमे वा शिव-शक्तिमे ( अन्तरङ्ग परम-सत्तामे ) देखल, अथवा एहि तीनू शरणकेँ अष्टशक्तिमे परिणत कए ( साधनाक बलेँ अष्टशक्तिक अभिन्न काय, वाक्, चित्तकेँ बनाए ), अपन देहकेँ शिवशक्तिमे लीन कए देल, एहन अनुभव होअए लागल। तखन मायाकेँ सपना मानि संसार-सागरकेँ पार कएल। गङ्गा-पिङ्गला दूनूक तरङ्गकेँ रोकि ( मध्यस्थ सङ्गम मध्य-नाड़ीकेँ अपन प्राण-कुण्डलिनीशक्तिसँ पूर्ण कए ) वैरोचन, अक्षोभ्यादि देवसमूहकेँ करुआरि मानि हुनकहि लौकिक आश्रय धएने काय-नौकाकेँ खेबैत, योगसाधनामे लागल लागल काह्न मायाजालसँ उत्तीर्ण भेलाह। गन्ध-स्पर्शरसादि जे सुख-दुःख दिअए, हम इएह मानैत छी जे ओकर सत्ता निद्रा-विहीन, जाग्रत-सुषुप्तक मध्यवर्ती दशा स्वप्नदशासँ अधिक नहि, अर्थात् अवास्तविक थिक, भ्रममात्र होइत अछि जे यथार्थ थिक। चित्तकेँ कर्णधार मानि ( चित्तहिक बलेँ ) काह्नपाद सामरस्य-सुख-द्वीप दिशि चललाह।

७ ( १८ )

तिविह भुअणे मइ बाहिअ हेलेँ ।
हाँउ सुतेलि महासुहलीलेँ ॥
कइसणि हालो डोम्बी तोहोरि भाभरिआली ।
अन्ते कुलिणजण माझेँ कावाली ॥



तँइ लो डोम्बी सअल बिटालिउ ।
काज ण[1] कारण ससहर टालिउ ॥
केहो केहो तोहोरे बिरुआ बोलइ ।
बिदुजन[2] लोअ तोरेँ कण्ठ न मेलइ ॥
काह्ने गाइ तु कामचण्डाली ।
डोम्बीत[3] आगलि नाहि च्छिणाली ॥

× × ×

तीनू भुवन मोहि बाधित हेलेँ ।
हम सुतल महासुखलीलेँ ॥
कइसनि हे गे डोमिनि ! तोहर भभटपन ।
अन्ते कुलीन जन माझे कपाली ॥
तोहेँ हे डोमिनि ! सकल बिटारल ।
कार्य न कारण शशधर टारल ॥
केओ केओ तोहरा बिरुपा बोलइ ।
विद्वजन लोक तोर कण्ठ न मेलइ ॥
काह्नु गावइ, तोँ कामचण्डाली ।
डोम्बीसँ ( तः ) अगिली नाहि छिनारी ॥

तीनू लोककेँ हम तुच्छ बुभल, अवहेलना कएल, आब ओकर कोनो प्रशक्ति नहि हमरापर, ओकर विडम्बना हटि गेल। आइ हम सामरस्यसुख-विलासक सङ्ग तुरीयावस्थाक अनुभव करैत समाधिस्थ छी। हे महासुद्र वा शरीरधारिणी डोमिनि ! ई तोहर की भभटपन जे हमरा, कापालिककेँ, मध्य-स्थान दैत कुलीन ( शरीरलीन ) जनकेँ अन्तमे मोजर दैत छहुन्ह ( कापालिक महाशक्तिक मध्यस्थ बिन्दुमे आत्माकेँ लीन कए दैत छथि, एएह आशय )। तेँ ने कहल जाइत अछि जे तोँ प्रपञ्चिनी छह, तेँ तोँ सभकेँ बिलटा दैत छह, कार्य्य-कारण-सम्बन्धक अभावहुमे सहजेँ प्रबुद्धचित्तचन्द्रकेँ मुक्त करैत छह। केओ केओ तोरा बिरुपा ( विकृत रूपा, बिना रूपक ) कहैत छथुन्ह, विद्वज्जन

१। नर्गीको। शास्त्री—काजण २। बगीको। शास्त्री—बिदुजण
३। बगीको। शास्त्री—डोम्बी ए

तोरा कण्ठसँ नहि छोड़ैत छथून्ह ( अथवा कण्ठ नहि मैलैत छथून्ह )। काह्न गबैत छथि—हे महामुद्रे ! तोँ कामचण्डाली, कुण्डलिनी ( शक्ति ) वा कामेश्वरी महाशक्ति छह। काह्नक धारणा तेँ इएह छन्हि जे एहि डोमिनिसँ, महामुद्रासँ, आगाँ कोनो छिनारि नहि ( बड़ पैघ छिनारि छथि ओ, एहि अर्थमे जे सकल प्राणीक आत्मभूत शिवक सङ्ग रतिलीलाक हेतु आकुलि रहैत छथि )।

८ ( १९ )

भवनिर्व्वाणे पड़ह मादला।
मणपवणवेणि करण्डकशाला[1] ॥
जअ जअ दुन्दुहिसाद उछलिआँ।
काह्न डोम्बीविवाहे चलिआ ॥
डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम।
जउतुके किअ आणुतु[2] धाम ॥
अहणिसि सुरअपसङ्गे जाअ।
जोइणिजाले रअणि पोहाअ ॥
डोम्बीएर सङ्गे जो जोइ रत्तो।
खणह न छाड़अ सहज उन्मत्तो ॥

× × ×

भवनिर्वाणे पटह मर्दला।
मन-पवन दुइ करण्ड-कसाला ॥
जय जय दुन्दुभि शब्द उछलला।
काह्नु डोम्बी बिवाहए चलला ॥
डोम्बी विवाहि आहारल जन्म।
जउतुके कृत अनुत्तर धर्म ॥
अहर्निशि सुरत-प्रसङ्गे जाए।
योगिनि-जाले रजनी पोहाए ॥
डोम्बीकेर सङ्गे जे योगी रक्त।
खनहु न छाड़ए सहज उन्मत्त ॥

१। सेन—करण्ड-कसाला २। सेन—आणुतु



भव-बन्धन आ' मोक्ष ई दूनू पटहमर्दल वाद्ययन्त्रक काज कएलक आ' मनप्राणपवन करण्ड आ' कसाला वाद्ययन्त्रक। भव-बन्धनक ढोल-मृदङ्ग पिटैत आ' मन-प्राणक अनाहत-शब्द-ध्वनि प्रसरित करैत काह्न डोमिनि महामुद्राक सङ्ग सामरस्यक हेतु चललाह, बूझि पड़ैन्हि जे शून्यगगन दहराकाशमे जय-जय तुमुलनाद भए रहल अछि। काह्न साधना-मार्गपर बढ़ैत बढ़ैत शिवत्व-लाभ कए महाशक्तिमे सदाक हेतु संलीन भए गेलाह, आब जन्मक बन्धन छुटि गेल, जउतुकमे अनुत्तरत्व ( परमपद ) लाभ भेलन्हि, आइ ओ मुक्त छथि, अहर्निशि सामरस्यसुखोपभोगमे डुबल छथि; शास्त्रकथित शून्यहृदया योगिनीक विलास-विच्छित्तिक साक्षात्कार करैत राति बितबैत छथि। एहि डोमिनि- महामुद्रामे, चितिरूपरिणामिनिशक्तिमे जे योगी रति जाइत छथि ( एक बेरि ), तनिका पुनः ओहि विमर्शक आनन्दकेँ छोड़ल नहि जाइत छन्हि, ओ सहज-सामरस्यानन्दमे विभोर रहैत छथि।

९ ( २४ )[1]

पूर्णचन्द्र उदयति यदा।
चित्तराजो विमलो भवति तदा ॥ १ ॥
मोहमलं छिन्नं गुरूपदेशेन।
विषयेन्द्रियं गगनमुपैतं ॥ ध्रु० ॥
खसमबीजं यत् खसमं याति।
आत्मवृत्तस् त्रिधातुषु वितनोतिच्छायां ॥ २ ॥
यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्यपयाति।
( तथा ) भवसमुद्रमोहरजो दूरीभवति ॥ ३ ॥
राजहंसो यथा जलं विभिनक्ति।
भवं भुङ्क्ष्व [तथा] इति कथयति कृष्णपादः ॥ ४ ॥

× × ×

पूर्णचाद्र उगए जब।
चित्तराज विमल होए तबे ॥

१। "This giti with its Sanskrit Commentary lost due to a lacuna in the Ms. is given below in Sanskrit retranslation from Tib. version appended in Roman Transliteration at the end of the work....... ."

मोहमल छिन्न गुरूपदेशें ।
विषयेन्द्रिय गगनयुक्त ॥ ध्रु० ॥
खसमबोध जे ( से ) खसम जाए ।
आलमवृक्ष त्रिधातु ( मे ) पसारए छाया ॥
जेना उगने सूर्यक राति पड़ाए ।
( तेना ) भवसमुद्र मोहधूलि दूर होए ॥
राजहंस जेना जल बिभिनावए ।
भव भोगइ ( तेना ) ई भनथि बिलुन ( काह्नु ) पाद ॥

षोडशकलायुक्त प्रबुद्ध चित्तचन्द्र वा प्राणचन्द्र जखन उदित होइत अछि, वहैत अछि, वा जखन विकसित भए षोड़शीक अन्तरङ्ग भए जाइत अछि सहस्रा-रस्थ शिवरूपमे, स्वतः तखन चित्तराज शुद्ध सत्, चित्, आनन्दमे परिणत भए जाइत अछि। गुरूपदेशसँ मोहमल नष्ट भए जाए आ इन्द्रियसभक प्रेरणा आब शून्यमे अन्तर्लीन भए जाए, सभ ओहीमे लागल रहए। पिण्डक शून्यस्थ बीज सेहो व्यापक अण्डक शून्यमे मीलि जाए। आत्मारूप वृक्षक छाया काय, वाक्, चित्तकेँ व्याप्त कएने अछि। जेना सूर्योदय भेलासँ राति [ अन्धकारयुक्त ] पड़ाए तहिना संसारक अगम्य सागरक मोहान्धकारमय निशा, चिद्घनप्रकाशसँ दूर पड़ा जाए। राजहंस जेना नीरकेँ क्षीरसँ फराक करैत अछि तहिना अचित्-केँ चित्सँ फराक रूपमे देखैत संसारक [ आ पुनः सामरस्यक ] भोग करह, कृष्णपादक ई कहब।

१० ( ३६ )

सुण बाह तथता पहारी ।
मोहभण्डार लइ सअला अहारी ॥
घुमइ ण चेवइ सपरविभागा ।
सहजनिदालु काह्निला लाङ्गा ॥
चेअण न वेअन भर निद गेला ।
सअल सुफल करि सुहे सुतेला ॥
स्वपणे मइ देखिल तिहुवण सुण ।
घोरिअ अवणागमण विहुन ॥



शाखि करिब जालन्धरिपाए ।
पाखि ण चाहइ[१] मोरि पाण्डिआचाए ॥

× × ×

सून-बाह तथता प्रहारि ।
मोहभण्डार लए सकल ( । ) आहारि ॥
सुतइ न देखइ स्वपरविभागा ।
सहज-निद्रालु काह्नु नङ्गा ॥
चेतन न वेदन भरि निन्द गेला ।
सकल सुफल करि सुखे सुतला ॥
स्वपने मोहि देखल त्रिभुवन सून ।
छोरि आवागमन विहीन ॥
शाखि करब जालन्धरपादे ।
पखी न देखइ मोर पण्डिताचार्यें ॥

शून्यमायाक प्रवाहकेँ शिवता-धर्मसँ, विमर्शसँ, प्रहार कए काह्न समस्त मोहभण्डारकेँ लए कए खा' गेलाह। आइ कान्ह तुरीयानन्दमे विश्रान्त छथि, स्व-परक भेद देखितहिँ नहि छथि। सामरस्यमे डूबल समाधिस्थ रहैत छथि, मायाक आवरणसँ मुक्त [ नग्न ] रहैत छथि, आब चैतन्यक अवस्थामे छथि, कोनो वेदना नहि, गाढ़ तुरीयमे ध्यानमग्न छथि। प्रतीत होइत छन्हि जे आइ सभ साधना सुफल भेल आ सुखसँ महाशक्तिमे डूबल सुतल छथि, स्वप्नहुमे जँ देखैत छथि तँ शून्यमये शून्यस्वरूपे विश्व, विषयवासना स्वप्नहुमे नहि सतबैत छन्हि। आब आवागमन-प्रक्रिया वस्तुकेँ छोड़ि देल, ओ निस्सन नहि रहल, घमि गेल, ओहि बन्धनसँ विहीन भए गेल छथि। एहि अवस्थाकेँ ककरा बुझाओल जाए ? केवल जालन्धरपादकेँ साक्षी मानल जाए, जे बुझैत छथि, अन्य पण्डिताचार्य तँ एहि मार्गक पक्षपाती नहिए प्रतीत होइत छथि।

११ ( ४० )

जो मणगोअर आलाजाला ।
आगम पोथी इष्टामाला ॥

---

१। बागीको। शास्त्री, सेन—राहुल

भण कइसेँ सहज बोलबा[1] जाअ ।
काअ वाक् चिअ जसु ण समाअ ॥
आले गुरु उपसइ सीस ।
वाक्पथातीत काहिब कीस ॥
जेत इ[2] बोली तेत वि टाल[3] ।
गुरु बोध से सीसा काल ॥
भणइ काह्नु जिणरअण वि कइसा[4] ।
कालेँ बोध संबोहिअ जइसा ॥

× × ×

जे मनगोचर आला-जाला ( इन्द्रजाला ) ।
आगम-पोथी इष्टामाला ॥
भन कइसे सहज बोलल जाए ।
काय वाक् चित्त जसु न समाए ॥
अलं गुरु उपदेशइ सीस ( शिष्य ) ।
वाक्पथातीत कहब काहि ॥
जते ई बोली तते टाल मटोल ।
गुरु बौक से शिष्य बहिर ॥
भनइ कान्हु जिनरतनो कइसन ।
बहिर बौक संबोधित जइसन ॥

जे किछु मनोगोचर तत्त्वसभ अछि, सभ मायाक इन्द्रजाल मात्र थिक, असत् थिक, तेँ आगमशास्त्रहुक सिद्धान्तसभ, देवी-देवतासभक विग्रहसभ, इष्टदेवीक जपमाला आदि सभ इन्द्रजाले थिक ( चित्त-शोधन-विकासक साधन मात्र थिक, अन्तिम सत्य नहि ) सहज सामरस्यानन्दकेँ शब्द द्वारा व्यक्त कोना कएल जाए ? कारण, ओहिमे तँ शरीरक, वाक् तत्त्वक वा चित्तक प्रवेशे नहि भए सकैत अछि [अवाङ्मनसगोचर ओ परम तत्त्व शिव-शक्ति तत्त्व थिक] । स्वयं

१। चर्याको। शास्त्री—बोलवा २। चर्याको। शास्त्री, सेन—जै तइ
३। चर्याको। शास्त्री—तैं त विटाल
४। चर्याको। शास्त्री—विकणइ सा



कोनो गुरु शिष्यकेँ उपदेश द्वारा हृदयङ्गम करेबाक प्रयास करैत छथि, वाक् माध्यमसँ उत्तर, अतीत परम तत्त्व ककरा कहल जाए ? जे किछु कहल जाइत अछि से सभ प्रश्नसभक समाधानक क्रममे टालमटोल करब मात्र थिक, उपर्युक्त उत्तर अनुभवमात्रैकगम्य थिक। गुरु जखन ओहि परम सत्ताक वास्तविक परिचय दैत छथि तखन हुनका मूके बनए पड़ैत छन्हि ( उत्तरमे 'नेति नेति' कहए पड़ैत छन्हि, परिणाममे चुप ), शिष्य जँ सत् शिष्य रहैत छथि तँ कथित शब्दसभकेँ अनसुनी कए केवल सारक अनुभवमे डूबि जाइत छथि। कान्हक धारणा तँ एहन छैन्हि जे ओ स्वर्गीरत्न ( परमसुखक अवस्था ) केहन थिक से कहब तहिना संभव आ' प्रभावशाली जेना सङ्केतमात्र द्वारा, बौकक द्वारा, बहिर केँ बुझाओल जाएब ।

१२ ( ४२ )

चिअ सहजे शूण संपुण्णा ।
कान्धविओएँ मा होहि विसण्णा ॥
भण कइसे काह्नु णाहि ।
फरइ अनुदिनँ[1] तैलोए पमाइ ॥
मूढ़ा दिठ नाठ देखि काअर ।
भाग तरङ्ग कि सोषइ साअर ॥
मूढ़ा अच्छन्ते लोअ न पेखइ ।
दूध माझेँ लड़ अच्छन्ते न देखइ ॥
भव जाइ ण आवइ एथु कोइ ।
अइस[2] भावे विलसइ काह्निल जोइ ॥

× × ×

चित्त सहजे शून सम्पूर्णा ।
कान्हु वियोगेँ न हो विषण्णा ॥
भन कइसे कान्हु नाहि ।
फरइ अनुदिन त्रैलोक्ये प्रमाथि ॥

१। चर्याको। शास्त्री—अनुदिन। २। चर्याको। शास्त्री, सेन—आइस।

मूढ़ ( ।)  दृष्ट नष्ट देखि कातर ।
भग्न तरङ्ग की सोखइ सागर ?
मूढ़ अछैते लोक न पेखइ ।
दूध माझे लेबु अछैते न देखइ ॥
भव जाइ न आवइ ( न ) एत काइ ।
अइसन भावेँ विलसइ काह्निल योगि ॥

आब काह्न सहजावस्थामे शून्यस्वरूपिणी महाशक्तिमे डूबल छथि, पूर्ण बनि गेल छथि, मुक्त छथि, चित्तक विषयी व्यापारक दृष्टिएँ मरिए गेल छथि ( प्राण रहितहुँ जीवन्मुक्त छथि ), आब काह्न व्यक्तिरूपमे ( विषयासक्तरूपमे ) नहि भेटताह, हुनक वियोग अनुभूत होएत, किन्तु विषाद नहि करु, ई कियेक बजैत छी जे काह्न नहि छथि, काह्न छथि ( हँ, जीवन्मुक्त छथि ) ओ तेँ अनुदिन त्रैलोक्यक प्रमाता शिवरूप बनि चिद्रूपमे स्फुरित होइत छथि, संफल होइत छथि, मूढ़ व्यक्ति सकल दृष्ट वस्तुकेँ नष्ट होइत देखि कातर भए जाइत अछि, ई नहि बुझैत अछि जे एक तरङ्ग भग्न भेलासँ की सागर सुखा जाएत ? मूढ़, अछैते लोक ( सूक्ष्म लोक ) ओकरा देखैत नहि अछि, दूधमे मक्खन अछैते ओकरा देखैत नहि अछि ( अर्थात् समस्त पदार्थक सारभूत शक्तिकेँ, ओकर निकट रहितहुँ, ओकर अस्तित्व रहितहुँ, चिन्हैत नहि अछि )। भवसँ केओ जाइत नहि अछि आ' ने केओ एतय अबैत अछि ( केवल मायाक कारणेँ जन्म-मृत्युक सीमाबोध होइत अछि ), एहन भावसँ काह्नयोगी सामरस्य-सुख-विलास करैत छथि ( ओ आइ नित्या परमा सत्तासँ परिचित छथि आ' ओहि सत्ताक आभास मायाकेँ मानैत छथि, तेँ जन्म-मृत्यु वस्तु निरर्थक बुझि पड़ैत छन्हि, आत्माक अविनाशित्व रहबाक कारणेँ ओकर आएबा-जेबाक प्रश्ने उठाएब अनुचित )।

१३ ( ४५ )

मण तरु पाञ्च इन्दि तसु साहा ।
आसा बहल पात फलवाहा ॥
वरगुरुवअणकुठारेँ छिजअ ।
काह्न भणइ तरु पुण न उइजअ ॥



बाढ़इ सो तरु सुभासुभ पाणी ।
छेवइ विदुजन गुरु परिमाणी ॥
जो तरु छेव भेवउ न जाणइ ।
सड़ि पड़िआँ रे मूढ़ ता भव माणइ ॥
सुण तरुवर गअण कुठार ।
छेवह सो तरु मूल न डार[१] ॥

× × ×

मन तरु पाँच इन्द्रिय तसु शाखा ।
आशा बहुल पात फलबाहा ( क ) ॥
वरगुरुवचनकुठारेँ छेवह ।
कान्ह भनइ तरु पुनि नहि उपजए ॥
बाढ़इ से तरु शुभाशुभ पानी ।
छेवइ विद्वज्जन गुरु - प्रमाणी ॥
जे तरु छेव (ए), भेदो न जानइ ।
सड़ि पड़ए रे मूढ़ ता' भव मानइ ॥
सून तरुवर गगन कुठार ।
छेवह से तरु मूल, न डार ( रि ) ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मनरूपी वृक्षक पाँच डारि थिक, ओहि शाखासभमे आशाक पातसभ लटकल रहैत अछि जे सभ फलवाहक मानल जाइत अछि। मोहेँ ( मोहक कारणेँ ) लोक शब्दस्पर्शादिगत सुखानुभवक प्राप्तिमे आशाकेँ लगओने रहैत अछि, सदिखन आशा करैत अछि जे अमुक फल भेटत एवमादि। आशामे घुरिआएल रहि लोक सत्यसँ दूर भए जाइत अछि, तेँ परम-सत्यक अनुसंधानक हेतु ओहि आशाक मूल मनोवृत्तिहिकेँ काटह, श्रेष्ठ गुरु-वचन-कुठारसँ से कए सकबह। ओ गाछ शुभाशुभ ( -उत्पादक पुण्य-पाप )क जलसिञ्चनसँ बढ़ैत अछि, शुभाशुभकर्मसँ चित्तक विषय-वासना बढ़ैत जाइत अछि, गुरुप्रमाणसँ विद्वज्जन एहि वासनानुरक्त चित्तवृत्तकेँ काटैत छथि।

---

१। बगोची। शास्त्री, सेन—डाल।

जे व्यक्ति एहि वृक्षक छेद-भेद करए नहि जनैत छथि से ता' धरि जगज्जालमे विश्वास करैत सड़ि जाइत छथि। सुतरां अविद्यारूप, मायारूप ओहि शून्य-तरुकेँ विद्यारूप (विमर्शरूप) गगन-कुठारसँ काटह, शून्य-मायाक आवरण-विक्षेपरूप वृक्षकेँ महामायाक शून्याहन्ताविमर्श-कुठारसँ काटह, जड़िसँ काटह, केवल शाखासभकेँ नहि काटह।

## विरुवापाद

१ (३)

एक से शुण्डिनि[1] दुइ घरे साम्धअ।
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ॥
सहजे थिर करि वारुणी सान्ध।
जेँ अजरामर होइ दिढ़ कान्ध॥
दशमि दुआरत चिह्न देखिआ[2]।
आइल गराहक अपणे बहिआ॥
चउशठि घड़िये देल पसारा।
पइठेल गराहक नाहि निसारा॥
एक से घड़ली[3] सरुइ नाल।
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल॥

× × ×

एक से शुण्डिनी दुइ घर मिलबए।
चिक्कन बाकलेँ वारुणी बान्हए॥
सहजे थिर करि वारुणी मिलबह।
जेँ अजरामर होइ दीढ़ कान्ह (स्कन्ध)॥
दशमि दुआरिएँ चिह्न देखिकेँ।
आएल ग्राहक अपने बहिकेँ॥

१। सेन—शुण्डिनिपी। २। सेन—देखइआ। ३। चर्यो०, सेन—घड़ ली।



चौंसठि घड़िएँ देल पसार।
पइसल ग्राहक नाहि निःसार॥
एक से घटी, सूक्ष्म नाल।
भनथि विरुआ थिर करि चाल (ह)॥

एक ओ शुण्डिनी, शौण्डीशक्ति वा कुण्डलिनी-शक्ति दुइ घरकेँ वा सूर्य-चन्द्र नाड़ी केँ मिलबैत अछि, विवाह द्वारा वा सुषुम्नामे कठि; चिकन वस्त्र-महानाड़ी (सुषुम्नाख्या) वा गुरूपदेशसँ वारुणी (सहस्रारस्थ मधु) केँ बन्हैत अछि। सहजभाव वा सामरस्य-भावकेँ स्थिर कए ओहि चित्तकेँ परमशिवलीन करह। किएक? ओहिसँ तोँ अजर-अमर भए जएबह, दृढ़स्कन्ध भए जएबह। हे कान्हक आत्मन्! दशम दुआरिएँ [वैरोचनद्वारसँ (सं० टी०) वा दशम इन्द्रिय उपस्थचिह्नद्वारेँ][4] महाराग-सुख-चिह्न देखि ओ ग्राहक (कामसत्त्व) बाहर आएल आ' अपनाकेँ दिवाराति प्रसरित रखलक, ओहि सामरस्य-सुख (वा स्त्री-चिह्न) मे प्रविष्ट भए पुनः निःसृत नहि भेल। ओ जे पूर्वोक्त तत्त्वज्ञानकेँ घटित केनिहारि नाड़ी, तकर नाल सूक्ष्म (ज्ञानमय)। विरुवापाद कहथि—ओहि चित्त वा प्राणकेँ निस्तरङ्ग रूपमे, प्रशान्तरूपमे चलाबह। (एहिठाम मैथुनक प्रतीक अछि)।

## महीधरपाद

१ (१६)

तिनिएँ पाटेँ लागेलि रे अणह कसण घण गाजइ।
ता सुनि मार भयङ्कर रे विसअमण्डल सअल भाजइ॥
मातेल चीअगअन्दा धावइ।
निरन्तर गअअणन्त तुसेँ घोलइ॥
पाप पुण्ण बेणि तोड़िअ सिकल मोड़िअ खम्भाठाणा।
गअअणटाकलि लागि रे चित्त पइठ निवाणा॥

४। 'सिद्धसाहित्य' (पृ० ३११) मे मूलाधार तथा शुक्रवैरोचनक उल्लेख; दोहर, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय (५-५) क गणनामे दशम अछि 'उपस्थ'।

महारसपाने मातेल रे तिहुअन सएल उएखी ।
पञ्चविसअनायक[1] रे विपख[2] कोवि न देखी[3] ॥
खररविकिरणसन्तापें रे गअणाङ्गण गइ पइठा ।
भणन्ति महित्ता मइ एथु बुड़न्ते किम्पि न दिठा ॥

× × ×

तीनिएँ पाटें लागल रे ! अनहद-कसण घन गाजइ ।
से सुनि मार भयङ्कर रे ! विषय-मण्डल सकल भाजइ ॥

मातल चित्त-गजेन्द्रा धावइ ।
निरन्तर गगनान्त तुसेँ घोरइ ॥

पाप पुण्य दुइ तोड़ि सकइ मोड़ि सम्भावना ( स्थाना ) ।
गगन अनहद लागि रे ! चित्त पइस ( ल ) निर्वाणा ॥
महारसपाने मातल रे ! त्रिभुवन सकल उपेखि ।
पञ्चविषयनायक रे ! विपक्ष काहु ने देखि ॥
खर रवि-किरण-सन्तापें रे ! गगनाङ्गन गइ ( आ ) पैसा ।
भनथि महित्ता मोहि बुड़ैते किमपि ( किछु ) न दृष्टा ॥

काय-वाक्-चित्त एहि तीनू पट्टमे लागल अनाहत घनघोर गर्जन करैत अछि, से सुनि भयङ्कर विषय-वासनादिरूप मार ( काम ) टूटि जाइत अछि । महीधरपादक चित्त-गजेन्द्र ज्ञानासवप्रमत्त भए दौड़ैत अछि, ऊपर उठैत अछि, सहस्रारस्थ शून्य-गगनकेँ सकल विकल्परूप चोकड़क सङ्ग घुमबैत ( वा विकल्प घोरैत )[4] अछि अर्थात् शून्यगगनरूप जाँतमे सकल विकल्पकेँ पीसैत अछि । पाप-पुण्य दूनू साँकड़केँ तोड़ि, अविद्यास्तम्भकेँ मोड़ि ( समोड़ि ) शून्यगगनक अनाहतध्वनि ( टाकलि[5] )मे लीन भए चित्त मुक्तिमे, सामरस्य-समाधिमे, पैसि गेल । ओहि समाधिक सुखसँ उन्मत्त पञ्चविषय ( शब्दस्पर्शादिक अनुभव )क विजेता चित्त सकल त्रिभुवनक ( भौतिक ) उपेक्षा करैत अछि आ' आब ओकरा

१। सेन—पञ्च विषयेर नायक २। चर्गीको —विपख ३। चर्गीको। शास्त्री—देखि
४। मैथिलीक 'घोरब' ( एहिठाम चाकरक ४४ घोरब ) अर्थ रहितहुँ चर्गीको (एहि गीत)क पा० टि० मे 'चूर्ण' तेँ दूनू अर्थ देल।
५। तुलनीय आसामीक 'टकालि' शब्द 'a clicking noise'—चर्गीको (पा० टि०) द्रष्टव्य



हेतु विपक्षताक, प्रतिकूलताक, कोनो प्रश्ने नहि अछि । सभकेँ अनुकूले देखैत अछि । आब ओ चित्त कुण्डलिनी-योगक द्वारा सामरस्यक प्रखर ज्ञानरवि-किरणक आलोक पाबि शून्य गगनाङ्गनमे जा' पैसल । महीधर कहैत छथि, आब ओहि शून्यमे, चिन्मयीमे, डुबल हम किछु नहि देखैत छी ।

## भादेपाद

### १ ( ३५ )

एत काल हाँउ अच्छिलेँ स्वमोहेँ ।
एबेँ मइ बुझिल सद्गुरुबोहेँ ॥
एबेँ चिअराअ मोकु[1] णठा ।
गअणसमुदे टलिआ पइठा ॥
पेखमि दह दिह सर्ब्बइ शून ।
चिअ बिहुने पाप न पुन ॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ ।
मइ अहारिल गअणत पणिआ ॥
भादे भणइ अभागे लइला[2] ।
चिअराअ मइ अहार कएला ॥

× × ×

एत काल हम छलौँ स्वमोहेँ ।
अबे हम बुझल सद्गुरुबोधेँ ॥
अबे चित्तराज मोर नष्ट [ ा ] ।
गगन-समुद्रे टरि [ आ ] पैस [ ा ] ॥
पेखी दश दिश सबइ शून्य ।
चित्त-विहीने पाप न पुण्य ॥
वज्रिल देल मोहे लक्ष्य भनि ।
मोञे आहारल गगने पसि ॥
भादे भनइ अभागे लैला ।
चित्तराज मोहि आहार कइला ॥

१। चर्गीको। शास्त्री, सेन—मकु २। चर्गीको। शास्त्री, सेन—लइआ

एतेक काल हम मोहक सङ्ग छलहुँ, आब हमरा सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ शून्यतामे आबि गेल। आब हमर कुचित्त नष्ट भए गेल, शून्यगगनमे टरि कए चल गेल, पैसि गेल। आब सभ दिशि शून्ये शून्य प्रतीत होइत अछि। आब चित्तक व्यापार रुकि गेल, वासना नष्ट भए गेल, स्वतः पाप-पुण्यक प्रश्ने नहि अछि। वज्रकुल वा कौल सम्प्रदाय हमरा लक्ष्य सुझाए देलक, विषयसभकेँ छोड़ि हम सहस्रारस्थ शून्यमे पैसि अमृत आहार (भोग) कएल। भादेपाद कहैत छथि—आब हम अविभाज्य परमाणुकेँ आत्मसात् कए लेने छी, आब हम चित्तराजहिकेँ आत्मस्थ कए लेने छी।

## भामपाद

२ ( ४७ )

कमल कुलिश माझेँ भइआ मिअली।
समताजोएँ जलिल[1] चण्डाली॥
डाह डोम्बीघरे लागेलि आगि [ णी ][2]।
ससहर लइ सिञ्चहुँ पाणी॥
न उ खरजाला धूम[3] न दिशइ।
मेरुशिखर लइ गअण पइसइ॥
दाढ़इ हरि हर बाह्म भडा।
फीटा हइ नवगुण शासन पडा॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी।
पञ्च नालेँ उठे गेल पाणी॥

× × ×

कमल कुलिश माझे भए मिलली।
समताजोगेँ (प)जरल चण्डाली॥

---

१। चर्यो० शास्त्री, सेन—जलिय २। चर्यो०। शास्त्री, सेन—आगि
३। चर्यो०। शास्त्री—धुम



डाह डोम्बीघरे लागलि आ[ग] (गी)।
शशधर लइ (ए) सीँचह पानी॥
न ओ खरज्वाला धूम न देख (ि)इ।
मेरुशिखर लइ (ए) गगन पइसइ॥
डाहइ हरि-हर ब्रह्म (ब्रह्म) भट्टा।
फाटल होइ नवगुण शासन पट्टा॥
भनइ धाम स्फुट लेहु रे! जानी (नि)।
पञ्चनालेँ उठि गेल पानी (नि)॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक मध्यबिन्दुमे (ताहि परमतत्त्वक सङ्ग) संयुक्त भेलीह (कमल योनिक प्रतीक आ' कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग कुण्डलिनी-स्वयम्भूलिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि)। एहि (कुण्डलिनी-) योग द्वारा चण्डालीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर जाग्रत भए गेल। हुनक निवास: अन्तःस्थ अङ्गुष्ठप्रमाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर, ओहि (कुण्डलिनीक) तेजसँ विनष्ट भए गेल, वासनादिक दृष्टिएँ। ओकर प्रखर ज्वाला शान्त कोना भेल? शरीरस्थ चन्द्रमण्डलक शीतल अमृतसँ। आब ओ ज्वाला प्रखर नहि रहल, कालिम विकारक लेश धूमो नहि नयनगोचर रहल'- मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलीह (आ' पुनः गगनस्वरूप महाशक्तिस्वरूप धारण कए लेलन्हि)। आब तँ ओहि शक्तिक तेजसँ हरि-हर-ब्रह्मा, सभ विग्रहवान देवतागण (वा सूत्रशुक्रविष्ठानाडी), दग्ध भए गेल छथि [भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व बँचि गेल परमशिव (शिव-शक्ति, परस्पराश्लिष्ट आ' परस्पराभिन्न)] नवपवनरूप नवगुणक एवं इन्द्रियशासनक पट्ट फाटि गेल। धाम कहैत छथि—हे योगिन्! स्फुट (रूपमे) जानि लएह, उक्त पाँचो तत्त्व वा व्यक्ति, हरिहरब्रह्मा (वा सूत्रशुक्रविष्ठानाडी), पवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल (नहरि, द्वारा)क काज कएलक, जकर सहायतासँ अद्वैतक शीतलभावना-जल, सामरस्यक शीतल आह्लाद दैत, प्रवाहित भेल। ई सभ हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल, किन्तु परिणाममे शक्ति संयुत शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक वा सामरस्यक अनुभव शीतल आनन्द देलक। सएह अभिप्राय।

## वीणापाद

१ ( १७ )

सुज लाउ ससि लागेलि तान्ती ।
अणहा दाण्डी एकि[1] किअत अवधूती ॥
बाजइ अलो सहि हेरुअवीणा ।
सुनतान्तिधनि विलसइ रुणा ॥
आलि कालि बेणि सारि सुणिआ ।
गअवर समरस सान्धि गुणिआ ॥
जबेँ करहा करहकलेँ[3] चापिउ ।
बतिश तान्तिधनि सअल विआपिउ ॥
नाचन्ति बाजिल गान्ति देवी ।
बुद्धनाटक[4] विसमा होइ ॥

× × ×

सूर्य लौका शशि लागलि तन्त्री ।
अनहत दण्डो एकीकृत अवधूती ॥
बाजइ अरे ! सखि ! हेरुकवीणा ।
सुन-तान्त्रिध्वनि [धनि ] विलसइ रुणा ॥
आलि कालि दुइ सा रि सुनि ।
गजवर समरस सन्धि गुनि ॥
जबे करभा करभकले[3] चापल ।
बत्तिस तान्ति-ध्वनि सकल विआपल ॥
नाचैत बज्रिल गबैत देवी ।
बुद्ध - नाटक विश्राम होइ ॥

सूर्यमण्डलक आभासरुप लौका ( तुम्बा ) हमर वीणा ( अन्तःसुखमय ज्ञानमयसंगीतक अभिव्यञ्जक नाडी-चक्रोक चन्द्राभासरुप तन्त्रीसे लागल अछि ।

१। सेन—बाकि २। सेन—सुणेआ
३। बगीको। शास्त्री, सेन—करहकले
४। बगीको। शास्त्री—बुद्ध नाटक



अनाहत-वीणादण्डमे समस्त वासनाकेँ सुषुम्नाद्वारा लीन ( लय ) कए देल । आब हे सखि ! महामुद्रे ! हेरुकक वा शिवक वीणा बाजि रहल अछि; आब हम, वीणाधारी वीणापाद, शिवत्व प्राप्त कएल आ' हमर सामरस्यमय संगीतकेँ गुञ्जित करैत ई देह-चक्र नादहीन अछि । शून्य-तन्त्रीध्वनि रुणु-रुणु शब्द-विलास, वाक्-विलास, करैत अछि । अलि-कालि, स्वरव्यञ्जन वर्णमे सा रि ध्वनि सुनि, हमर चित्त-गजेन्द्र सामरस्यसन्धिक अनुभव कएल । तत्पश्चात जखन ओ गजवर सकल विषयरूप अन्य गजशिशुसभकेँ करभध्वंसक ( विषय-गण-शिशुध्वंसक ) ज्ञानप्रकाशसँ चापि देल, दमित कए देल, तखन समस्त बत्तीसहु नाड़ीरूप तन्त्रीमे नाद-ध्वनि व्याप्त भए गेल । आब वज्री, पुंचिह्नधारी शिवरुप साधक नाचि रहल छथि, हुनक अभिन्ना शक्ति गाबि रहल छथि ( सामरस्यभाव व्यञ्जक ध्वनि व्यक्त कए रहल छथि ) तथा बुद्धनाटक वा प्रबुद्ध शिवरूप साधकक आनन्दमयी लीला विश्रान्त भए रहल अछि ।

## चाटिलपाद

१ ( ५ )

भवणइ गहण गम्भीर वेगेँ वाही ।
दुआन्ते चिखिल मझेँ[1] न थाही ॥
धामार्थे चाटिल साङ्कम गढ़इ ।
पारगामि लोअ निभर तरइ ॥
फाड़िअ मोहतरु पाटि जोड़िअ ।
अदअ दिढ़ टाङ्गी निवाणे कोहि [ ? हि ]अ[2] ॥
साङ्कमत चड़िले दाहिण वाम मा होही ।
निअड़ि बोहि दूर मा जाही ॥
जइ तुम्हे लोअ हे होइब पारगामी ।
पुच्छतु चाटिल अनुत्तरसामी ॥

× × ×

भवनदी गहन गम्भीर वेगेँ वाही ।
दूनू अन्ते [ तीर ] चिक्कड़, माझे न थाही ॥

१। बगीको। शास्त्री, सेन — माझेँ
२। बगीको। शास्त्री—कोरिअ। सेन—कोहिअ

धमणिँ चाटिल साङ्ह (पूल) गढ़इ ।
पारगामी लोक निर्भर तरइ ॥
फाड़ि मोहतरु पाट जोड़ि ।
अद्दय दढ़ टेङ्कारी निर्वाण कोड़ि ॥
साङ्ह (पूल) चड़ि दहिन बाम न होअइ ।
निअड़ बोधि दूर न जाइ ॥
यदि तोहेँ लोक हे ! होएबह पारगामी ।
पुछह चाटिल अनुत्तर सामी [स्वामी] ॥

जगत् रूप नदी अथाह गम्भीर वेगसँ बहैत अछि, एकर दूनू तट, धर्म-अर्थ, पिच्छड़ अछि जाहिसँ एहि नदीमे उतरबे कठिन। मध्यमे जाइत जाइत तँ एहन विकट परिस्थिति आबि जाइत अछि जे थाह पाएब कठिन, कारण, बिचक मध्यबिन्दु छथि रहस्यमय चिद्रूप। दूनू तटक धर्म-अर्थक, समन्वयक हेतु चाटिल्लपाद एक पूल गढ़ैत छथि, ओ पूल थिक कौल सम्प्रदाय; एहि पूलपर चढ़ि पारगामी लोकसभ निर्भर भए जगत्-नदीकेँ पार कए सकैत अछि। मोहतरुकेँ उपाड़ि, ओहि भवकेँ उदात्त शक्ति-अनुरागसँ आत्मसात् कए पट्ट ( पीठस्थान )मे जोड़ि मिलाए लएह। अद्वय ( शिवशक्ति-परस्पराश्लिष्ट परम अद्वितीय तत्त्व ) रूप टेङ्काडीसँ मुक्तितरुक मूल कोड़ि निकालह, जाहिसँ आन्तरिक रहस्य ओकर बोधगम्य भए सकइ। कौलमार्गरूप पूलपर चढ़ि, दक्षिण-वाम उपचारक फेरिमे नहि पड़ह, निकटहिमे चिन्-बोध प्राप्त होएतह, ओ छूटि नहि जाइ, अधिक दूर नहि चल जएतह। हे श्रोतृगण ! जँ तोँ सभ पारगामी होअए चाहैत छह तँ अनुत्तर स्वामी ( शिवतुल्य ईश ) चाटिल्लपादकेँ पुछह।

## कम्बलाम्बरपाद

१ ( ८ )

सोने भरिली करुणा नावी ।
रूपा थोइ नाहिक[1] ठावी ॥

१। सेन—नहि के



वाहतु कामलि गअण उवेसेँ ।
गेला[2] जाम बाहुडइ[3] कइसेँ ॥
खुण्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
बाहतु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥
माङ्गत चड़हिले चउदिस[4] चाहअ ।
केड़ुआल नाहि के कि[5] बाहबके पारअ ॥
वाम दाहिण चापी मिलि मिलि माङ्गा ।
बाटत मिलिल महासुहसाङ्गा ॥

× × ×

सोनेँ भरली करुणा नाव ।
रूपा थापए नाहिक [ नहि अछि ] ठाम ॥
खेवह कम्बल [ कामालि ] गगन-उदेशेँ ।
गेल जन्म बहुरइ कइसेँ ॥
खुट्टा उपाड़ि खोलल डोरी ।
खेवह कम्बल [ कामालि ] सद्गुरु पूछि ॥
माङ्गि [ वा मार्ग ][6] [ पर ] चढ़ने चहुदिस ताकए ।
करुआरि नाहि के की खेवा कऽ पारए ॥
वाम-दाहिन चापि मिलि मिलि माङ्गि [ मार्ग ] ।
बाटे मिलल महासुख सङ्ग ॥

करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका हमर शून्य-स्वर्णसँ ( स्वर्णसदृश चकमक शून्यताविमर्शसँ ) जड़ल अछि, भरल अछि, ओहिमे रूपसंवेदना वा रूप-धातु रखबाक स्थान नहि, अवकाश नहि, अथवा नाहक ओहिपर रूप-वेदनादिक स्थापन। हे कम्बल ! वा हे कामालि ! शून्यस्वरूपिणीक प्राप्तिक हेतु करुण-चित्त-नौकाकेँ खेबि चलह, ई विश्वास राखह जे एहि पारगमनसँ जे जीवन बीति जएतह से कथमपि पुनः नहि आबि सकैत छह, निश्चित तोँ मुक्त भए जएबह।

२। चर्याको। शास्त्री, सेन—गेली ३। चर्याको। शास्त्री—बहुडइ। सेन—बहुडइ
४। चर्याको। शास्त्री—चउ दिश ५। चर्याको। शास्त्री, सेन—के कि
६। 'माङ्ग'कस्थान मार्ग ए० डी० मे, 'माङ्गि' ( नावक भागविशेष ] अधिक समीचीन।

ई चित्त-नौका जाहि आभास-दोषमे बान्हल छलइ से दोष-खुट्टी आब उपड़ि गेलइ, जाहि अविद्याक डोरसँ बान्हल छलइ से आब ढील भए गेलइ, तखन हे कम्बल ! [ कामालि ! ] तोरा चित्त-नौका-वाहनमे कठिनता किएक होएतइ ? सद्गुरुकेँ पूछि खेबि चलइ। सामान्यतया लोक एहि नौकाक माझिपर [ वा मार्गपर ] चढ़ि भीत भए चारूकात आश्रय तकैत रहैत अछि। करुआरि [ गुरु-उपदेश, दैवी-कृपा ] नहि रहलासँ के कोना पार कए सकैत अछि ? तेँ गुरुक आश्रयमे, गुरु-देवताक निर्देशरूपासँ चित्त-नौकाकेँ जीवन-नदीमे वा भाए-बाढ़मे आगाँ बढ़बइ [ चित्तकेँ चिकसित कए चितिरूपमे परिणत करइ ]। एहि स्वनिर्दिष्ट शङ्का-विचारक क्रममे कम्बलाम्बरपाद स्वयं कहैत छथि—उक्त विषय-सभकेँ ध्यानमे राखि हम आगाँ बढ़लहुँ, वामदक्षिण मार्गसभकेँ दबाए अपन कौलसाधनाक अनुसरण कए नौका-माझिक वा मार्गक अवलम्बन कएल, बइ त बइ त अनायास बाटहिमे महासुख [ -प्रदात्री शक्ति वा सामरस्य-भाव ] सङ्ग भए गेल।

## ढेण्ढणपाद

१ ( ३३ )

टालत मोर घर नाहि पड़वेशी[१]।
हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी ॥
वेङ्गस साप[२] बढ़हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि वेण्टे समाअ[३] ॥
बलद बिआएल गविआ बाँझे।
पिटा दुहिअइ ए[४] तिना साँझे ॥
जो सो बुधी सोध निबुधी।
जो सो[५] चौर सोइ साधी ॥
निते निते सिआला सिहे सम[६] जुझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले[७] बुझअ ॥

× × ×

१। चर्याको। शास्त्री, सेन—पड़वेषी २। चर्याको। शास्त्री—वेङ्ग संपार। सेन—वेग संप ३। चर्याको। शास्त्री—समाअ ४। चर्याको। शास्त्री, सेन—दुहिए ए ५। चर्याको। शास्त्री, सेन—सो ६। चर्याको। शास्त्री, सेन—सिआला सिहे षम ७। चर्याको। शास्त्री—बिचरिले



नगरे[८] मोर घर नाहि प्रतिवेशी।
हाँड़ीमे भात नाहि नित आवेशी ॥
बेङ (बेंग)सँ साप काटल जाए।
दूहल दूध की (स्तन-) कुचे समाए ॥
बरद (ब)ड़द बिआएल गैआ बाँझे।
पोड़ा दूहल जाए ए ! तीन साँझे ॥
जे से बुद्धि सेहे (शुद्ध) निर्बुद्धि।
जे से चोर सेहे साधु (थि) ॥
नित नित शृगाला सिंहे सम जुझए।
ढेण्ढणपादक गीत विरले बुझए ॥

उक्त नगर सहस्रार-मेरुशिखर हमर निवासस्थान; ओहिठाम अद्वैत परमशिवरूपमे हम एकसरे छी, केओ पड़ोसी नहि अछि। अविद्यामे भात नहि, अर्थात् अपन शरीरमे ओकरपने परिपक्व, प्रबुद्ध, चित्त नहि, चित्त चितितादात्म्य प्राप्त नहि कए सकए, तेँ योगीन्द्रकेँ नित्य शून्यस्वरूपिणीक आवेश राखए पड़ैत छन्हि (अथवा चित्त नित्य विषयक आवेशमे डूबल रहैत अछि)। सापे बेङ्गसँ काटल जाइत अछि, अर्थात् चित्ते काय-वाक्सँ खण्डित (नष्ट) कएल जाइत अछि (अथवा व्यङ्ग शून्यरूपे जेना कुचित्त-सर्पसँ दष्ट हो, तहिना अद्भुत प्रतीत भए रहल अछि)। दूहल दूध पुनः स्तनामध्ये कोना प्रवेश करए ? अर्थात् योगीन्द्रक चित्त वा आत्मा पुनः अपन उद्गम शून्यमयी महामुद्रामे प्रविष्ट भए रहल अछि, ई आश्चर्यक गप्प। बलद प्रबुद्ध चित्त (बलद, बड़द रहितहुँ) ज्ञानरूप सन्तान प्रसूत कएलक आ' गाय बन्ध्ये रहल अर्थात् शून्य नैरात्माक प्रसवक प्रश्ने नहि। अरे ! देखइ तीनू साँझ शरीरस्थ पीठक दोहन करैत छी, शक्तिकेँ आकर्षण कए आत्मलीन करैत छी। एहि अवस्थामे बुझल, नहि बुझब दूनू एके रङ्ग। विषयरूप परद्रव्यापहारी चित्त-चोर आ' समाधिस्थ चित्त-साधु दूनू एके रङ्ग। आब ई साक्षात् अनुभव होइत अछि जे नित्य प्रतिनित्य सिआर सिंहसँ लड़ैत अछि अर्थात् संसरणशील चित्त सबल भए, स्थिर भए, अद्वयक, अद्वितीय परमशिवक प्रभुता, छिनए चाहैत अछि। ढेण्ढणपादक एहि गीतक आशय विरले बुझए।

८। टाल—नगर (बा०), नाक [ शास्त्री ] प्रायः आलङ्कारिक।

## ताड़कपाद

१ ( ३७ )

अपणे नाहिँ सो[1] काहेरि शङ्का।
ता महामुदेरी टुटि गेलि कङ्खा॥
अनुभव सहज मा भोल रे जोइ।
चौकोटिविमुका जइसो तइसो होइ॥
जइसने अछिलेस[2] तइसन अच्छ।
सहज पिथक जोइ भान्ति मा हो वास॥
बाण्डकुरुण्ड सन्तारे जाणी।
वाक्पथातीत काँहि वखाणी॥
भणइ ताड़क एथु[3] नाहिँ अवकाश।
जो बुझइ ता गलेँ गलपास॥

× × ×

अपने नाहि तँ ककर शङ्का।
से महामुद्रा, टुटि गेल कांक्षा॥
अनुभव सहज न भूल रे योगि (न्)!
चौकोटि-विमुक्ता जइसे तइसे होइ॥
जइसने छलह तइसन छह।
सहज-पृथक् योगि (न्) भ्रान्ति न हो बास॥
बहुआ—पौसी सन्तारे जानी।
वाक्पथातीत काहि बखानी॥
भनइ ताड़क एत नहि अवकाश।
जे बुझइ तसु गले गलपाश॥

अपन ( शरीरक ) जखन शङ्का ( चित्तमे ) नहि तँ आन ककर चिन्ता? ओ महामुद्रा तेहन छथि जे हमर सभ कामना चल गेल, आब हम हुनकहिमे

१। सेन-सो २। सेन। शास्त्री—अछिले ध। नगीको—इछिलेसि
३। नगीको—एथु। सेन—एतु



लीन भए सन्तुष्ट छी। हे योगिन्! सहज-सामरस्यक अनुभूतिकेँ बिसरह नहि, जेना तेना चतुष्कल विषय-भण्डारसँ, संचित कर्मकोषसँ, मुक्त भए जाह। ई बुझह जे तोहर आत्मा नित्य तत्त्व, सभ दिन एक रूप रहएबाला छह। हे योगिन्! एहि सहज कौशसाधनासँ थोड़हुसँ फराक नहि होअह। भवसागर पार करबाने अपन पाथेय ( तत्त्वज्ञान ) दिशि ध्यान रखबह। कतेक कहिअह तोरा, अवाङ्मनोगोचर ककरा बुझाओल जाए? एहि साधनाक रहस्यमे पैसबाक अवकाश सभक हेतु नहि, जे एकर मर्म बुझत तकर गरमे गर-फाँस पड़ि जाएत, तकरा हेतु ई संसार फाँसी जकाँ बन्धन प्रतीत होएत—ई ताड़कक कहब छन्हि।

## कङ्कणपाद

१ ( ४४ )

सुने सुन मिलिआ जबेँ।
सअल धाम उइआ तबेँ॥
आच्छहुँ चउखन (ण)[1] संबोही।
माझ निरोहेँ अणुअर बोही॥
बिन्दु णाद ण हिऍं पइठा।
आण चाहन्ते आण बिणठा॥
जथा आइलेसि[2] तथा जान।
माझे[3] थाकी सअल बिहाण॥
भणइ कङ्कण कलअल सादेँ।
सर्व्व विचुरिल तथतानादेँ॥

× × ×

सूने सून मिलित [ । ] जबे।
सकल धाम उदित [ । ] तबे॥

१। नगीको, सेन। शास्त्री—आच्छहुँ चउ खण
२। नगीको। शास्त्री, सेन—जथाँ आइलेँसि
३। नगीको। शास्त्री, सेन—मासे (झें)

छी [ हम ] चउखन सं‍बोधी ।
माझ - निरोधेँ अनुत्तर बोधी ॥
बिन्दु नाद न हिये पइसा ।
आन देखैते आन विनष्टा ॥
यथा अएलहु तथा जान [ गमन ] ।
माझे रहि सकल विहान [ विलहोहि ] ॥
[ माझे बसइ सकल विहान ( प्रभात ) ] ॥
भनइ कङ्कण कलकल - शब्दें ।
सब विचूरल तथता - नादेँ ॥

शरीरस्थ शून्य जखन ब्रह्माण्ड-शून्यमे मिलित भए गेल, तखन सकल अनुत्तर धर्म उदित भए गेल। हम सर्वदा संबोधिमे, तुरीयमे लीन रहैत छी, मध्य-निरोधसँ, मध्यविकास भेलापर, हम परम-शिवरूप बनि गेल छी। बिन्दु-नाद हृदयङ्गम नहि, तेँ व्यर्थ बूझि पड़ैत अछि। एक दिशि ध्यान गेलासँ दोसर दिशि नष्ट भए जाइत अछि ( नाद-बिन्दु दिशि गेलासँ समाधिए टूटि जाइत अछि )। जहिना अएलहुँ ( आत्मरूपमे ) तहिना चल जएबहु। मध्यमे, शक्तिकेन्द्रमे, चित्त रखला पर आब अन्य तत्त्वकेँ छोड़ह अथवा ई बुझह जे मध्यसमाधिसँ सगरो प्रभातकालीन प्रकाश प्रतीत होएतह। कङ्कणपाद कहैत छथि—तथतानादसँ ( शिवक 'तत्'-रूपतानादसँ[१], विमर्श-शक्तिस्वभाव-नादसँ ) सभ विचूर्ण भए गेल, अविद्याक समस्त सृष्टि समाप्त भए गेल।

## जयनन्दीपाद

१ ( ४६ )

पेखु सुअणे अदशे जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्का जइ मणा ।
तवेँ तुटइ अवणागमणा ॥

१। "— — in the form of the 'thatness' (tathatā) of all entities or as pure consciousness."—A. I. T. B.—P. 58
संग-संग, 'सोऽहं' नाद—विमर्शनाद अभिप्रेत ( द्रष्टव्य पाछाँ विमर्श-लक्षण )।



न अ दाढइ न अ तिमइ न च्छिजइ ।
पेख लोअ मोहे बलि बलि बाम्झइ ॥
छाआ माआ काअ समाणा ।
बेणि पाखेँ सोइ विणाणा[१] ॥
चिअ तथतास्वभावे षोहइ ।
भणइ जअनन्दि फुडण ण होइ ॥

× × ×

देखु सपने आदर्शे जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्ता यदि मना ।
तवे टूटइ आवागमना ॥
ने ओ जरए ने ओ भीजए ने छेदल जाए ।
देख लोक मोहेँ बलि बलि बाझए ॥
छाया माया काय समाना ।
दुइ पखे सोइ विज्ञाना ॥
[ दुइ पखे रहए नाना[२] ] ॥
चित्त तथतास्वभावे सोहइ ।
भनइ जयनन्दि स्फुरण न होइ ॥

देखह, स्वप्न वा दर्पणमे जेना तहिना चित्तक अन्तरालमे भ्रमात्मक मोह, स्वप्नमे वा दर्पणमे यथार्थ-प्रतिबिम्बमात्र अयथार्थ आपाततः सत्य प्रतीत होइत अछि, तहिना प्रतीत विश्वक मोह अछि। जँ मन मोह-मुक्त भए जाएतह तँ जन्म-मृत्यु-बन्धन टूटि जेतह। आत्मा शिवरूप अजर अछि, जलप्रवेशायोग्य नहि अछि, अछेद्य अछि, किन्तु लोक मोहसँ ओकर स्वरूप नहि चिन्हैत अछि आ' विषयवासनाक मोहसँ अपनाकेँ नष्ट कए ओहिमे ओझराए जाइत अछि। छाया [ शिवक, प्रकाशक आभासमयी शक्ति ], माया [ बन्धनग्रस्त करए वाली ] आ' काया तीनूमे वस्तुतः तादात्म्य अछि, केवल आपाततः भिन्नता प्रतीत होइत

१। बागीबो—वि एाक्षा
२। द्रष्टव्य पूर्व पा० टि०।

अछि। वाम-दक्षिण शुद्ध मार्ग परित्यागमे एही विज्ञानपर आइल अछि [ अथवा दून् मार्गक अनुसार तीनू एकहि परमशिवक नाना रूप अछि[३] ]। जयनन्दीपाद कहैत छथि—हमर चित्त आब तथतास्वभावक सङ्ग, परम शिवतास्वभावक अर्थात् विमर्शशक्तिक सङ्ग शोभित अछि; अहन्ताक एहि स्थितिमे किछु फुरि नहि रहल अछि, 'नेति नेति'क मूकास्वाद होइत अछि।

## तन्त्रीपाद

### १ ( २५ )[१]

धर्मोदयः पादाधिष्ठानं वज्रपदं नादः ।
पञ्चक्रमं ग्रथित्वा तन्त्रिणः पटो विमलः ॥१॥
अहमेव तन्त्री स्वयमेव तानं ।
वितानं [च] स्वयमज्ञातलक्षणं ॥ध्रु०॥
सार्धत्रिहस्तं गृहे वेमसुक्तं त्रिवृतं ।
गगनं पूर्णं स हि तन्त्रवयनं ॥२॥
अनाहतो वेमवरशब्दो हि गुरूपदेशेनाविरहितं ।
द्वे स्थिती छित्त्वा सूत्राणि व्याकृत्य दृढं प्रसारितानि ॥३॥
मणिं गतः शून्यतया लक्षणशून्यतातारं ।
वयन [ जाल ]रसस्तन्त्री मोहजालमुक्तः ॥४॥

× × ×

धर्मोदय पादाधिष्ठान, वज्रपद नाद ।
पञ्चक्रम बीनि तन्त्रीक पट विमल ॥
हमहि तन्त्री अपने तानी ।
भरनी स्वयं अज्ञातलक्षण ॥

१। छायामे कोष्ठान्तर्गत पाठक अनुसार, तेँ ओ द्रष्टव्य।
२। विमर्शशक्तिकेँ शिवा प्रकाशक स्वभाव मानल जाइत अछि—'प्रकाशस्य विमर्श-स्वभावः'—पराप्रवेशिका पृ० १
३। "The Caryā and the Sanskrit Commentary ( save the last two verses ) are lost which are put here in Sanskrit retranslation from Tib. version appended at the end of this work."—चर्यागीति (पृ० ८२) प्रा० हि०



साढ़े तीनिहाथक, गृहमे परतानमुक्त त्रिवृत्त ।
गगन पूर्ण, ओएह पट तन्त्रवयन [बीनब] ॥
अनाहत परतान—वरशब्द गुरूपदेश सँ अविरहित ।
दुइ [सूतक] बन्हि काटि, सूत धुमा दृढ़ पसारल ॥
मणिमे जाए शून्यता सङ्ग लक्षण शून्यतातारने ।
वयन [ जाल ] रस—तन्त्री मोहजालमुक्त ॥

धर्मोदय भेल अर्थात् विमर्शस्वभावक स्फूर्ति भेल। नादक अनुसंधान-रूप वज्रपदक अर्थात् शिवपदक प्राप्ति भेल। गुरुक पञ्चक्रमोपदेशरूप सूतकेँ बीनि, तन्त्रीक पट विमल भए गेल अर्थात् चित्तपट विशुद्ध भए गेल, विकल्पहीन भए गेल। हम स्वयं जोलहा छी, तानी सेहो हमहि छी अर्थात् हमर आत्मा अछि तानसमान मूलरूप। भरनी जे शक्ति तनिक लक्षण अज्ञात अछि। एहि जगद्रूप घरमे ई साढ़े तीनि हाथक शरीर आब परतानसँ मुक्त अछि, एहिपर आब चित्तविशुद्धीकरणरूप बिनबाक प्रक्रियाक प्रयोजन नहि। आब ई शरीर अपन शरीरत्वके छोड़ि शून्यस्वरूप, पूर्णाहन्तास्वरूप, विमर्शस्वरूप पूर्णताकेँ प्राप्त कए गेल अछि। आब ओ चित्त जे एहि रूपकेँ प्राप्त कएने अछि सएह तँ थिक तन्त्रवयन अर्थात् बुनब बानि। हृदयस्थित अनाहतनादे तँ परतान [बि र]क शब्दविशेष थिक जे गुरूपदेशसँ कखनहुँ विरहित [फराक] नहि रहैत अछि। तानक आधार-भूत सूत जे खुट्टीमे बान्हल रहैत अछि, तहिना जे एहि शरीरस्थ प्राण तथा अपा-नक तन्तु वा इड़ा-पिङ्गलाक तन्तु, तकरा हम एहि शरीरेँ काटल जे वाम-दक्षिण श्वास-नाड़ीक गतिकेँ अवरुद्ध कए मध्यविकास कएल, सुषुम्नाख्या महानाड़ीक विकास भेल वा कुम्भक द्वारा वायु मध्यस्थितिमे आँटकि गेल। तत्पश्चात् कुण्ड-लिनीस्वरूप सूतकेँ विकसित कएल। मणिपूरचक्रमे शून्यताशक्तिक प्रतिरूप कुण्डलिनीमे, जनिक लक्षण नहि अछि ताहिशक्तिमे, मोहि वयनजालकरससँ [विमर्शमय स्वभावक अन्तरङ्ग चित्तकेँ बनएबाक शक्ति] सामरस्य-विभोर तन्त्री [जोलहा वा तन्त्रीपाद] आइ अन्य जालसँ, मोहजालसँ, विमुक्त भए गेल छथि।

## शान्तिपाद

### १ ( १५ )

सअसम्वेअणसरुअविआरेँ अलक्ख लक्खण न जाइ।
जे जे उजूवाटे गेला अनावाटा भइला सोइ॥

कुलें कुल मा होइ रे मूढा उजूवाट संसारा।
बाल तिल[1] एकु वाकु ए भूलह राजपथ[2] कन्धारा॥
मायामोहसमुदा रे अन्त न बुझसि थाहा।
अगे नाव न भेला दीसइ[3] भन्ति न पुच्छसि नाहा॥
सुना पान्तर उह न दीसइ भान्ति न वाससि जान्ते।
एथ[4] अटमहासिद्धि सिझइ उजूवाट जाअन्ते॥
वाम दाहिण दोवाटा च्छाड़ी शान्ति बुलथेउ संकेलिउ।
घाट न गुमा खड़ तड़ि ण होइ आखि बुझिअ वाट जाइउ॥

× × ×

स्वसंवेदनस्वरूपविचारें अलक्ष्यलक्षण न जाइ।
जे जे सोझ बाटे गेला अनबाटा भेला सोइ॥
कुले कुले न होअइ रे मूढ़ा ! सोझ बाट संसारा।
बाल ! तिल एक बाङ्क न भूलह राजपथ अनकधारा॥
माया-मोह-समुद्रा रे ! अन्त न बूझसि थाहा।
अग्रे नाव ने भेला देखिअ, भ्रान्ति न पुछसि नाथा॥
सुना प्रान्तर (पाँतर) ऊह न देखिअ, भ्रान्ति न बासह जेते।
एत अष्टमहासिद्धि सिझइ सोझबाट जेते॥
वाम दहिन दो बाटा छाड़े शान्ति बुलथि संकोड़थि।
घाट न गुल्मा खड़-तर न होइ, आँखि मूनि बाट जाथि॥

स्वसंवेदन ( आत्मबोध ) ( आत्म-प्रत्यभिज्ञा )क स्वरूप विचार कएलास शान्तिपाद अलक्ष्यलक्षणयुक्त तत्त्व दिशि नहि जाइत छथि। जे जे योगी साधक एहि सरल मार्ग, कौलमार्गसँ गेल छथि, से सभ विनु बाटक, बाटसँ मुक्त, भए गेलाह। एहि सम्प्रदायसँ ओहि सम्प्रदायमे, एना बदलि बदलि नहि चलह, एक सम्प्रदाय कौल सम्प्रदायकेँ, सोझ सम्प्रदायकेँ, एहि अंतसँ पकड़ने रहह हे बालयोगिन् ! तिलो भरि ई वाक्य नहि बिसरह जे ई पथ राजपथ, स्वर्णपथ-सदृश पथ थिक। माया-मोहक समुद्रक अन्तमे कतहु थाह नहि भेटतह।

१। चर्याको, सेन। शास्त्री—भिण    २। चर्याको, सेन। शास्त्री—राज पथ
३। चर्याको। शास्त्री, सेन—दीसअ    ४। चर्याको। शास्त्री, सेन—एषा



एहि अगम्य समुद्रमे आगाँ नावो करुआरि नहि देखैत होएतह, तथापि तोँ भ्रान्त भए कोनहु गुरुअहुकेँ नहि पुछैत छहुन्ह। ओएह देखह, शून्य प्रान्तर ( पाँतर ) देखैत नहि छहक ? आगाँ बढ़ह, भ्रान्ति छोड़ह। कौल मार्गक, सरल पथक, अनुगामी भेने एहि संसारहिमे अष्टमहासिद्धिलाभ भए जेतह। वाम-दक्षिण, दून् पथ, छोड़ि शान्ति विहार कए रहल छथि। एहि मार्गमे कतहु घाट, गुल्म, खड़-तर आदि प्रतिबन्धक नहि ( पतनक डर नहि ), आँखि मूनि शान्तिपाद जाए रहल छथि।

२ ( २६ )

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।
आँसु धुणि धुणि निरवर सेसु॥
तउ से हेरुअ[1] ण पाविअइ।
सान्ति भणइ किण स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।
पुन लइआ[2] अपणा चटारिउ॥
बहल बढ[3] दुइ मार न दिशअ।
सान्ति भणइ बालाग न पइसअ॥
काज न कारण ज एहु जुअति।
सअसँवेअण बोलथि सान्ति॥

× × ×

तूर धूनि धूनि अंशु रे अंशु।
अंशु धूनि धूनि निरवयव होय॥
तैओ हेरुक न पाबिअइ ( प्राप्यते )।
शान्ति भनइ, की ओ भाबिअइ ( भाव्यते )॥
तूर धूनि धूनि सूने आहारल।
पुनि लए अपना ( केँ ) चाटल॥

१। चर्याको। शास्त्री—तउसे हेरुअ। सेन—तउ से हे रुअ
२। चर्याको। शास्त्री—लइआँ। सेन—लइआँ
३। चर्याको। शास्त्री—बढ। सेन—बाढ

वहुल वड़ल दुइ मार्ग न देखिअ।
शान्ति भनइ थाकाय [ ? ][४] न पइसए॥
काज न कारण जे एहु जुगति।
स्वसंवेदन बोलथि शान्ति॥

तुर धुनि धुनि अंश-अंश कएल गेल अर्थात् शरीर, वाक्, चित्तक साधना करैत करैत बिन्दुरूपसँ ओहिसभक अनुभूति होअए लागल, पुनः ओहि अंश-परमांशहुपर सभकेँ बैसबैत पेलबैत ओ निराकारपर केन्द्रित भए गेल, अंश-परमांश परिणामसँ निराकारब्रह्ममे परिणत भए गेल। तथापि, शान्ति कहैत छथि, परम शिव ( हेरुक )क प्राप्ति नहि भए सकल, तेहन सन बूझि पड़ैत अछि, वस्तुतः हुनक स्वरूपक भावन होएबो कोना करए, ओ तँ भावित-भाव्य तत्त्वसँ अतीत छथि, शून्यरूपिणीमहतीशक्तिसँ संयुत तेजस् मात्र छथि। तेँ परम-शिवत्व प्राप्त करबाक हेतु हम शान्तिपाद ओहि शून्यमयी शक्तिकेँ आहृत कए आत्मसात् कए लेल, सएह तँ भेल आत्मामे विमर्श शक्ति, अहन्ताज्ञान, जगत्पत्र। मुदा परिणाममे हमरा इहो अहन्ता नहि रहल; हम, शान्तिपाद, सभकेँ अन्तर्लीन कए लेल, स्वाद लए चाटि लेल। वाम-दक्षिण मार्ग, घन आ' वड़ल-वड़ल मार्ग, हमरा नहि देखि पड़ैत अछि, ओकर अनुसरण केनिहारसभकेँ तँ उक्त रहस्य ( शैव दर्शन ) केहनो भरि ने पैसए। कार्य-कारण-सम्बन्धसँ विहीन जे ई युक्ति ( वा योग ) से तर्कगम्य नहि, स्वसंवेदन(स्वानुभूति)मात्र गम्य थिक, शान्तिक मत सएह छन्हि।

---

४। पूर्व द्र० गीत का० २

# पारिभाषिकशब्दानुक्रमणिका

एहि अनुक्रमणिकामे चर्यागीतमे आएल पारिभाषिक शब्दसभकेँ प्रकरणमे बैसाए, ताहिमे अक्षरानुक्रमेण राखि, शब्दक आगाँमे कोष्ठमे ताहि गीतक संकेत देल गेल अछि जाहिसँ ओ शब्द आएल अछि। स० आदि कविक नाम-संकेत अछि तथा १,२ आदि हुनक गीतक क्रमसंख्या अछि। स्वतः स०१क अर्थ भेल सरहपादक गीत संख्या १, एहि प्रकारेँ देखलासँ एहि पोथीमे गीत तथा ओ पारिभाषिक शब्द भेटि जाएत।

समानता-चिह्नसँ पारिभाषिक शब्दक छायार्थ तथा पुनः ओकर पारि-भाषिक अर्थ दए देल अछि। पारिभाषिक अर्थक आगाँमे ओहि अनुच्छेदक संख्या देल अछि, एहि पोथीक भूमिकाक जाहि अनुच्छेदसँ ओहि अर्थ, वस्तु वा तत्त्वक विचार भेटत। कतहु कतहु अर्थकेँ प्रामाणिक सूचित करबाक हेतु संस्कृतछायादिक निर्देश कएल गेल अछि। संकेतसभक प्रयोग कएल गेल अछि, जकर विवरण नीचा प्रस्तुत कएल जाइत अछि। संस्कृतछाया तथा टीकाक प्रसंग एक कथ्य ई जे केवल एकेटा छाया तथाटी का भेटैत अछि—डा० बागचीक संस्करणमे संस्कृत छाया तथा डा० बागची-म० म० शास्त्री वा सेनक संस्करणमे देल एक संस्कृत टीका। तेँ जतए संस्कृत छाया वा टीकाक निर्देश अछि ततए ई बुझबाक थिक जे शब्द लग कोष्ठमे निर्दिष्ट गीतक संस्कृत छाया तथा टीका अभिप्रेत अछि तथा ओ छाया-टीका उक्त ग्रन्थमे ओहि निर्दिष्ट गीतक नीचामे भेटैत अछि। किन्तु, ( एहि अनुक्रमणिकामे ) पारिभाषिक शब्दक लगमे ओहि संस्करणसभक गीतसंख्या नहि अछि, एहि प्रस्तुत पुस्तकमे जे हम गीत संख्या देल अछि से संख्या अछि। तखन उक्त दूनू संस्करणमे निर्दिष्ट गीत कोना

भेटत ? एहि समस्याक समाधान अनायास भए जाएत जखन एहि पोथीमे निर्दिष्ट गीतपर ध्यान जाएत; कारण, एहिमे हम प्रत्येक गीतक ऊपरमे, कोष्ठमे, उक्त तीनू संस्करणमे आएल ओहि गीतक संख्या दए देल अछि। तेँ ओहि संस्करण-सभकेँ देखबाक क्रम ई रहत जे पहिने एहि पोथीमे पारिभाषिक शब्द लग निर्दिष्ट संकेतक अनुसार गीत ताकि लेल जाए तखन, जँ तुलनाक प्रयोजन हो, ओहि गीतक ऊपरमे कोष्ठमे देल संख्या उक्त संस्करणसभमे देखल जाए, अनायास ओ गीत भेटि जाएत।

एहि अनुक्रमणिकामे जे संकेतसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर विवरण एहि प्रकारेँ बुझबाक थिक :—

१। कविक नाम-संकेत—नाम संकेतक विवरण स्वतन्त्रे भेटत एहि पोथीक समस्त संकेतक विवरणमे। कविक नाम संकेतक आगाँक संख्या एहि पोथीमे ओहि कविक ओहि गीतक क्रम संख्या थिक, जाहिसँ स०१ संकेतक अर्थ सरहपादक गीतक संख्या १ बुझबाक थिक, तात्पर्य ई जे ओ पारिभाषिक शब्द सरहपादक गीत सं० १ मे भेटत, एवम्प्रकारेँ पारिभाषिक शब्दकेँ गीतमे ताकल जाए सकैत अछि।

२। =चिह्नक अर्थ एतबे जे पूर्व आएल शब्दक छाया अर्थ आगाँ आएल शब्द भेल तथा पुनः तकर पारिभाषिक अर्थ तकर आगाँक शब्द भेल।

३। अर्थक आगाँ कोष्ठमे आएल संख्या—प्रस्तुत पोथीक भूमिकामे सन्यकित अनुच्छेदक संख्या।

४। द्र०—द्रष्टव्य।

५। सं० टी०—संस्कृत-टीका-भाग ओहि गीत वा गीतसभक।

६। सं० छा०—संस्कृतछाया [ श्लोकमय ] जे 'चर्यागीतिकोष'मे प्राप्य।

७। बं० टी०—म०म० शास्त्रीक संकलनक उत्तरभागमे बंगला टीका।

८। च० गी० को०—चर्यागीतिकोष

९। ता० बौ० सा० सा०—तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य

१०। सं० श० को०—संस्कृत-शब्दकोश [ आप्टे महाशयक ]

११। I. B. I.—The Indian Buddhist Iconography.

१२। पा० टि०—पादटिप्पणी



१३। तु०—तुलनीय

१४। पृ०—पृष्ठ

१५। ऐजन—ई सूचित करब जे जे ओहिसँ ठीक पहिने आएल अछि सएह।

१६। प्र०—प्रकाशः। सू०—सूत्र।

पोथीसभक विशद परिचय पुस्तकसूचीमे प्राप्य, ई केवल पारिभाषिक शब्दसूचीक संकेत-विवरण भेल। पारिभाषिक शब्दसभकेँ यथासाध्य विषयक दृष्टिसँ वर्गसभमे बाँटि अर्थ प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

## परमसत्य

अचिन्त [स० १] = अचिन्त्य = परमात्मा वा परमशिव [६३]।

अजरामर [स० १, वि० १] = मुक्त [११७,१२१-१२५]।

अणुअर [क० १] = अनुत्तर [६२] = जाहिसँ ऊपर कोनो सत्ता नहि।

अदअ [भु० ८, चा० १] = अद्वय = परस्पराभिन्न शिवशक्ति [८१]।

अनुत्तर [ चा० १]——द्र० अणुअर।

अपा [स० २, आ० १] = आत्मा [८४-८६]।

अमिअ [भु० २] = अमृत = सहस्रारस्थ मधु [१०६] वा सामरस्यानन्द [११६]।

अमिआ [स० ४] = अमृता = अमृत [द्र० अमिअ]।

अलक्खलक्खण [दा० १, शा० १] = अलक्ष्यलक्षण [६३]।

आसव [का० २] = मधु = अमृत। द्र० अमिअ।

एकाकारे [का० ४] = एकाकार भए = समरस भए [६३-६५]।

करुण शून [का० ६] = करुणा-शून्य = शिवशक्ति [८३]।

खसमे [शा० २] = गगन समान = शून्य समान [७५]।

गअन [भु० ७] = गगन = शून्यरूप शिवशक्ति [७४]।

जिणउरा [डो० १] = जिनपुरा = महासुखपुर [सं० टी०] = परलोक, सामरस्यक अवस्था [११५]।

जिनउर [का० १, का० ५] = जिनपुर। द्र० जिणउरा।

धाम [स० १, का० ८, क० १] = अनुत्तरधाम [६२] = परमपद।

परम निवाणे [शा० १] = परम निर्वाणमे = परम मोक्षमे [१२२]।

परम मोख [का० ४] = परम मोक्ष = परमा मुक्ति [१३२]।

पूर्णचन्द्र [का० ६] = षोडशकलायुक्त बोधिचित्तचन्द्रमण्डल [सं० टी०] = सहस्रारस्थ षोडशीक अन्तरङ्ग चित्त वा प्राण [२७३,३२०]।

बोहि [स० २, चा० १] = बोधि = बोधिचित्त = परमशिव [८४] = प्रकाश-विमर्श [६३]।

बोही [क० १] = बोधी = बोधिचित्त [द्र० बोहि]।

महासुख [कु० ३] = सामरस्यानन्द [११५]।

महासुह [लु० १, दा० १, भु० ४, का० ६, का० ७, कण्ह १] = महासुख = सामरस्यानन्द [११५]।

महासुहे [शा० १, शा० २, भु० ८] = महासुखें [द्र० महासुह]।

महासुहें [शा० २] = महासुखमे [द्र० महासुह]।

मुकल [स० २] = मुक्त [१३२]।

मुका [भु० ७] = मुक्त [द्र० मुकल]।

वाक्पथातीत [का० ११, ता० २] = वाक्पथसँ अतीत परमतत्त्व [६३]।

वारुणी [वि० १] = मद्य = "वारुणीति सुखप्रमोदत्वात्" [सं० टी०] सँ परम-शिवमे लीन भेला पर सामरस्यानन्द वा सहस्रारस्थ मधु [१०६]।

विरमानन्द [भु० ४] = विलक्षण चतुर्थानन्द [सं० टी०] = तुरीयानन्द [३१०] = सामरस्य-समाधिक आनन्द [३१०]।

विहाण [भु० ३] = विहान = ज्ञान [-सूर्य]क उदय [१७२]।

शून [भा० १] = शून्य [७५]।

शून्यताराजे [कु० ३] = महासुख [द्र० गीतक ओही पंक्तिमे 'महासुखनामा'] = सामरस्यानन्द [११५]।

सअलानुत्तर माणी [शा० १] = सकलानुत्तर मानि = समस्त विश्वकेँ अनुत्तर परमतत्त्व [क प्रतिबिम्ब] मानि [द्र० अनुत्तर]।

---

१। चर्यागीतमे एँ तथा एक प्रयोग वर्तमान विभक्तिएँ किछु दोषर रूप भेल अछि। तृतीयामे ए तथा षष्ठीमे एँ क प्रयोग भेटैत अछि [द्र० बिजयचन्द्रपादकृत दोहाकोश—भूमिका पृ० ५१-५२]। किन्तु हमरा कतहु कतहु उक्त रूपक अतिरिक्त एँ क प्रयोग तृतीयामे तथा एक प्रयोग षष्ठी विभक्तिमे सेहो भेटल, प्रस्तुत अनुक्रमणिकामे सर्वत्र सं० छाया तथा सं० टीकासँ ई धारणा पुष्ट भेल अछि। कतहु एक अर्थमे ए लागल सेहो भेटैछ।



सअसँवेअण [शा० २] = स्वसंवेदन = अ [१७३]।

सअसम्वेअण [शा० १] = स्वसंवेदन = [द्र० सअसँवेअण]।

समरस [वी० १] = समस्त अनेकतामे एकताक अनुभूति [६६] = सामरस्यमय [३५५-३५६]।

समरसे [भु० ७] = समरसस्थितिमे [६६]।

सहज [का० ११] = सहजेँ [स्वभावतः, स्वतः] प्राप्त सामरस्यक आनन्द [१४१]।

सहज निदालु [का० १०] = सहजनिद्रालु = सामरस्यसमाधि (तुरीय)मे डूबल [१४१]।

सहजमहातरु [भु० ७] सामरस्यमय शिवशक्ति (= परमशिव) रूप महान् वृक्ष [१४१]।

सहज सरुआ [भु० ५] = सहज स्वरूपा = सामरस्यमय शिव-शक्तिक स्वरूप [१४१]।

सहजानन्द [भु० ४] = सामरस्यानन्द [१४१]।

सहजे [स० ३, का० १२, वि १ = सहजेँ = सहजक संग = शिवशक्तिक संग, सामरस्यँ [१४१]।

सुण विआर [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यक विचार = परमतत्त्वक विचार [७४]।

सुन करुण [दा० १] = शून्य-करुणा = शक्ति-शिव [८३]।

सुने सुन [क० १] = शून्ये शून्य = ब्रह्माण्डशून्यमे पिण्डशून्य वा परमशिवमे शून्यताशक्ति [७४-८३]।

सुहे [का० १०] = सुखेँ = सामरस्यक महासुखेँ [११६]।

सूना पान्तर [शा० १] = शून्य प्रान्तर वा शून्य पाँतर = परमतत्त्वक साम्राज्य [७४]।

सोण रुअ [भु० ८] = सोन-रूप वा शून्यरूप (आकार) [७४]।

## शक्ति

अठकुमारी [का० ६] = अष्टकुमारी = अष्टप्रकृति [बं० टी०] [६८] अथवा अष्टशक्ति [कुमारी = शक्ति, द्र० शिवसूत्र प्र० १ सू० १३] ।

उदकचान्द [लु० २] = जलचन्द्र = जलमध्य चन्द्र-प्रतिबिम्ब । द्र० प्रतिबिम्बवाद [२२१] ।

कमलिनि [भु० ४] = कमलिनी = कुण्डलिनी [२४४] रूपी पद्मिनी महापद्म-वन दिशि जाइत ।

खसम सभावे [भु० ७] = गगनसमान स्वभावेँ = शून्यस्वभावेँ = विमर्श-स्वभावेँ [७७] ।

गअण डो० १, का० १३, कन्ह० १] = गगन = शून्यशक्ति = विमर्शशक्ति [७५] ।

गअणा [स० ४] = गगना = शून्यस्वरूपिणी [गगनहृदया] [८०] ।

गअणे स० ३] = गगने = शून्यतास्वभावमे = महतीविमर्शशक्तिस्वभावमे [७७]

गगन [त० १]—द्र० गअण ।

छाआ [ज० १] = छाया । द्र० प्रतिबिम्बवाद [२२१] ।

जलबिम्बाकारे [स० ४] = जलमध्य प्रतिबिम्बक आकारेँ । द्र० छाआ ।

जोइणि [का० ८] = योगिनि = योगिनी = महामुद्रा [२१७] ।

जोइणी [भु० ४, = योगिनी । द्र० जोइणि ।

जोइनि [गु० १] = योगिनि । द्र० जोइणि ।

डोम्बि [का० ३, का० ७] = डोमिनि = डोमिनि वा महाशक्ते २३२] ।

डोम्बी [डो० १, का० ८, धा० १] = डोमिनि । द्र० डोम्बि ।

तथता [का० २, का० १०, क० १, ज० १] = तथारूपता = विमर्शस्वभाव [३०२] ।

दापण पतिबिम्बु [भु० ६] = दर्पण-प्रतिबिम्ब । द्र० छाआ ।

नैरामणि [श० २, दा० १] = गृहिणी रूपमे भाविता नैरात्मा (ता० बौ० सा० सा० पृ० ३२७ = गृहिणीरूपमे भाविता शून्यस्वरूपिणी, निराकारशक्ति [२०८, २२४] तथा [७६] ।



पारिम कुलेँ [दा० १] = परम कुले = परमा शक्तिमे [१५७] ।

पोइआ [डो० १] = नीच जातिक कन्या (ब० गी० को० पृ० ४६), निम्नस्थिता स्त्री । = डोमिनि तथा निम्नसमपकस्था कुण्डलिनीशक्ति [३३२] ।

बहुड़ी [कु० १] = वधूटी = नवयौवना (सं० श० को०) = युवती शक्ति [मुद्रा] [१९५। अथवा कामोत्सुका कुण्डलिनीशक्ति [३३१] ।

बिआती [कु० १] = बिआइत = जगत्प्रसूती महामुद्रा [१९६] ।

महासुदेरी [ता० १] = महामुद्रा [२०८] ।

मातङ्गी [डो० १] = मातङ्गी महाविद्या वा चाण्डालिनी (सं० श० को०) = कुण्डलिनी शक्ति वा चण्डाली = कुण्डलिनीशक्ति [३४२] ।

माआहरिणी [भु० ३] = महामायास्वरूपिणी हरिणी = अन्तःशक्ति [३३१]-रूपिणी हरिणी ।

शुण्डिनि [वि० १] = शौण्डी वा शौण्डिनी [मद्यमत्ता वा कलवारनी— द्र० सं० श० को०] = रतिप्रिया शक्ति [२२५] अथवा रतिप्रिया कुण्डलिनीशक्ति [३३१] ।

शुण संपुआ [का० १२] = शून्य-सम्पूर्णा = शून्यस्वरूपिणी विमर्शसँ, अहन्तपरामर्शसँ सम्पूर्ण [७७] ।

सुइण [स० ४] = शून्य = शून्यस्वरूपिणी [८०] ।

सुण तरुवर [का० १३] = शून्य-तरुवर = मायारूपमे शून्यवृक्ष [७४ ख] ।

सुणमेहेली [श० २] = शून्य-महिला (सं० श्रा०) = स्त्रीरूपमे भाविता शून्याकारा शक्ति वा महामुद्रा [८०, २०८] ।

सुण विआर [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यशक्तिक [८०] विचरण ।

सुणे अहारिउ [शा० २] = शून्ये (शून्यकेँ) आहारल = शून्यकेँ आहृत कएल = शून्यशक्तिकेँ आत्मसात् कएल, अन्तःसाधना द्वारा आत्मलीन कएल [२३६] ।

सुन नैरामणि [श० १] = शून्यनैरात्मा । द्र० नैरामणि ।

सुनुपाख [लु० १] = शून्य-पक्ष = शून्य-शक्तिक [८०] पक्ष ।

सोने [कन्ह० १] = स्वर्णेँ वा शून्येँ = स्वर्णेँ वा [तत्समान चकचक करैत] शून्यता (विमर्श) शक्तिएँ [८०] ।

हूँ भव इ गअणा [स० ४] = हूँ-भव ई गगना = हूँकारबीजोद्भवा गगनहृदया महाविद्या (तारा), महती शक्ति [१५७] ।

### शिव

करुणाडमरुलि [आ० १] = करुणा-डमरू = करुणामय शिव [८३]क डमरू।

करुणा नावी [कम्ब० १] = करुणा-नाव = करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका [८३, ८६, ८६, १६६]।

करुणामेह [भु० ५] = करुणा-मेघ = शिवक करुणामय स्वरूप [८३]-मेघ।

खमण भतारे [कु० २] = ख-मन भतारे = गगन-मन स्वामी = शून्य-चित्त-स्वामी = चिद्रूपमे चित्त-स्वामी (चिच्छक्तिक) [८६]।

हेरुअ [वी० १, शा० २] = हेरुक = प्रज्ञाक स्वामी [I. B. I.—P. 157] = शक्तिक स्वामी [८१] = शिव [८१]।

## साधना-मार्ग

### सामान्य प्रमाण

अटमहासिद्धि [शा० १] = अष्टमहासिद्धि [१५७]।

इड्डामाला [का० ११] = इड्डक माला [१५७]।

उजुवाट [स० २] = सोझ बाट [१४८, १५७]।

एवंकार [का० २] = एवं मन्त्र [१५४, १५७]।

कपाली [का० ३, का० ४] = कापालिक [१४६, १५७, १५८]।

कवाली [का० ४] = कपाली। द्र० कपाली।

कापालि [का० ३] = कापालिक। द्र० कपाली।

कुल लइ [स० ३] = कुलाश्रित भए = शक्तिक आश्रित भए वा कौल मार्गें [१५७]।

कुलेँ कुल [डो० १] = इतस्ततः लटपट [च०गी०को० पृ० ४६ पा० टि० कुल मानि] अथवा एक देहसँ दोसर देहमे [प्रस्तुत गीतक मैथिली टीका द्रष्टव्य]।

कुलेँ कुल [शा० १] = एहि कुलसँ ओहि कुलमे = कौलक एक आम्नायसँ दोसरमे। कौलक हेतु द्रष्टव्य [१५७]।



चर्य्या [कु० १] = आचार [६]।

जोइ [का०३, का० १२] = योगी [१५८]।

जोइआ [गु० ६] = योगिआ। द्र० जोइ।

दाहिण वाम [चा० १] = दक्षिण-वाम मार्ग [१७८]।

धामार्थें [धा० १] = धर्म-अर्थ पुरुषार्थ मध्य [२४६]।

वाम-दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब० १, शा० १] = वाम-दक्षिण। द्र० दाहिण-वाम।

वीरा [गु० १, कु० २] = वीरभावाश्रित [१५७]।

हाडेर माली [का० ३] = हाड़क माला = अस्थिमाला [१५३, १५७]।

हूँ [स० ४] = हूँ-बीज (कूर्च-बीज) [१५७, ३७१]।

### काय-वाक्- चित्त [ त्रिधातु ]

काअ वाक् चिअ [का० ११] = काय-वाक्-चित्त [१६६]।

काअवाक्चिए [दा० १] = कायवाक्चित्ते। द्र० काअवाक्चिअ।

तिअ धाउ [श० १] = त्रिधातु = कायवाक्चित्त [सं० टी०] [१६६]।

तिअ धाए [गु० २] = त्रिधातुए = त्रिधातुमे [सं० छा०] = कायवाक्चित्तमे [१६६]।

तिनिएँ पाटेँ [म० १] = तीनि पाटमे = तीनि पीठमे [सं० टी०] = कायवाक्चित्त-पीठमे [सं० टी०] [१६६]।

त्रिधातुए [का० ६] = तीनि धातुमे = कायवाक्चित्तमे। द्र० तिअ धाए।

### मैथुन [ महामुद्रा-साधन ]

कमल कुलिश [गु० १, धा० १] = पद्म-वज्र = भगलिङ्ग [३४, १८५, २२६]।

कुन्दुरे [गु० १] = द्वीन्द्रिय संयोगमे [२२७] = मैथुनमे [२२७]।

कुलिशाब्ज [कु० ३] = वज्र-पद्म = लिङ्ग-भग। द्र० कमलकुलिश।

छिणाली [का० ७] = छिनारी = छिनारि = सभक आत्मा (-रूप शिव)क संग रमण केनिहारि [२२३]।

जाणजौवण [कु० २] = जान-यौवन = ज्ञान-यौवन वा तरुणयौवन [च० गी० को० पृ० ६६ पा० टि०] [०२४]।

तिथहुडा [गु० १] = त्रिअहुडा = नाडीत्रय [१४६]क अथवा योन्यत्र [२२३]।

दसमि दुआरउ [वि० १] = दशम दुआरिसौं = वैरोचन-द्वारसौं वा दशम इन्द्रिय उपस्थसौं [२२७]।

पँउआ वालें [सु० ८] = पउआ-वालें = पउआ-आरनिमे [तु० वालनं-सं० श० को०] = पञ्चारमे = भगवारमे [३४]
= प्रज्ञामे [१८५]
= शक्तिमे [१८६]।

बिआण [कु० २] = बिआन = जगतकेँ प्रसूत करब। द्र० बिआली (शक्ति)।
वअधारी [श० १] = पुँचिह्नधारी [४३४] = उपाय [१८५] = शिव [१८६]।
वअपद [ढ० १] = लिङ्गपद [३४] = उपायपद [१८५] = शिवपद [१८६]।
वाजणाव [गु० ८] = वज्रनाथ = लिङ्ग-नाथ [३४] = उपायनाथ [१८५]
= शिवनाथ [१८६]।

## चित्त

करहा [वी० १] = करभा = युवक हाथी [सं० श० को०]
= चित्तगज [८७, १६५, १६६]।
करिणा [का० २] = करिन् (अनादरमे) = गज = चित्तगज। द्र० करहा।
कालमुसा [भु० २] = कालमूसा = दुष्ट चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।
गअवर [वी० १] = गजवर = चित्तगजवर। द्र० करहा।
गअवरेँ [का० ५] = गजवरेँ। द्र० गअवर।
चिअ [भु० ८] = चित्त [८७, १६६]।
चिअकण्ठहार [का० ६] = चित्त-कण्ठहार [१६६]।
चिअराअ [स० २, भा० १] = चित्तराज [१६६]।
चिअ विकरणे [आ० १] = चित्त विकरणे = चित्त विकारे = विकल्पजाल [१६६]।
चिअ विहुन्ने [भा० १] = चित्तविहीने = चित्तविहीन भेलासँ [१६६]।
चित्त [दा० १]——द्र० चिअ।
चित्तराज [का० ६]——द्र० चिअराअ।
चीअगअन्दा [स० १] = चित्त-गजेन्द्र। द्र० गअवर।



चीअ थिर करि [स० ३] = चित्त स्थिर कए [१६६]।
चञ्चल चीए [गु० १] = चञ्चल चित्ते [१६६]।
चञ्चल मुसा [भु० २] = चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।
णिअ मण [श० १] = निज मन = निज चित्त [१६६]।
णिअ मन [भु० ४] = निज मन [द्र० णिअ मण]।
बलन्देँ [स० ४] = बलदेँ वा वरदेँ = इन्द्रियकेँ बल देनिहार बड़द समान
विकल्प-युक्त विमूढ़ चित्तेँ [१६६]।

मण [आ० १, का० १३] = मन = विकल्पयुक्त चित्त [१६६]।
मणरअणा [सु० ७] = मनरतना = मनोरतना = मनोरत्न = विकसित चित्त
[१६६]

मुसअ [भु० २] = मूषक = मूस = चञ्चल चित्त-मूस [१६५]।

हरिणा [भु० १] = चित्त-हरिण [१६६]।

## विकल्प

अवणागमण [का० १०] = आवागमन = जन्ममरण [१७०,१७१]।
अवणागमणा [ग० १] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमणा।
अवणागवणा [भु० २] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमणा।
आवरना [का० ३] = आवरणा = मायाक आवरण [१६६]।
अविदार [स० ४] = अविचार = अविद्याक [१७६]।
अविद्या [का० २] = अविद्या [१७६]।
आलाजाला [का० ११] = इन्द्रजाल [च० गी० को० पृ० २३१ पा० टि०]
= इन्द्रजाल अर्थात् मिथ्या मायाजाल [१७७]।

इन्दिअ [का० १] = इन्द्रिय [१७२]।
इन्दिआल [भु० ५] = इन्द्रिय-जाल [१७२] वा इन्द्रजाल [१७७]।
इन्दिविसिआ [भु० ८] = इन्द्रियविषया = इन्द्रिय-विषय [१७२]।
इन्दी [दा० १] = इन्द्रिय [१७२]।
करण कपटेर [ढ० १] = इन्द्रियकपटक [१७२]।
करिणिरेँ [का० २] = हथिनीकेँ = इन्द्रियरूप हथिनीकेँ [१७२]।

गोहाली [स० ४]=गो-हाली=इन्द्रियशाला (शरीर) [१७२]।

चांगेड़ा [का० ३]=चङेरा=मायाक आवरण-प्रपञ्चजाल (अपन हाथसँ बीनब) [१६६]।

जामभरण [सु० ७]=जन्ममरण [१७०, १७१]।

नणन्द [का० ४]=ननन्द=ननदि [ननान्दर्—सं० श्ला०] वा चक्षुरिन्द्रियादि (सं० टी०)=ननदि वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय [१७२]।

पञ्चजणा [सु०३]=पञ्चजना=पञ्चविषय (सं०टी०)=इन्द्रिय-विषय [१७२]।

पञ्चपाटण [सु० ८]=पञ्चपत्तन=(रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञान) पञ्चस्कन्धपर आश्रित अहङ्कारममकारादि (सं० टी०) [१७३]।

पञ्च विसञ [म० १]=पाँच विषय=पञ्च ज्ञानेन्द्रियक विषय [१७२]।

बान्धण [का० २]=बन्धन [१७३]।

भय घिण [आ० १]=भय-घृण=भय-घृणा=अष्टपाशमे भय-घृणापाश [१७४]।

भव [का० १२]=जगत् [१६२]।

भवनिर्वाणा [स० १]=भव-बन्धन-मोक्ष [१७३]।

भवनिव्वाणे [का० ८]——द्र० भवनिर्वाणा।

भवमोह [स० ४]=भव-मोह=संसारक मोह [१७२, १७३]।

भावाभाव [लु० २, सु० ५, सु० ७, का० ४]=भाव-अभाव विकल्प [१६६]।

भांतिएँ [सु० ६]=भ्रान्तिएँ [१६१]।

माआ [ज० १]=माया [१७२]।

माआजाल [का० ६]=मायाजाल [१७२]।

माआ मोहा [श० २]=मायामोहा=माया-मोह [१७२-१७३]।

मायामोह [शा० १]—द्र० माआ मोहा।

मोह [कु० २, का० १०, भा० १, ज० १]=मोह [१७३]।

मोहेँ [भा० १]=मोहसँ। द्र० मोह।

रस रसानेरे [स० १]=रस-रसायनक [१७५]।

राग द्वेष [का० ४]=राग-द्वेष [१७२]।

राजसाप [सु० ६]=रज्जु-सर्प=रज्जुमे सर्पक भ्रान्ति [१६१]।

वाणल [सु० ७]=वाणलः=जालसँ (सं० श० को०)=मायाजालसँ [१७२]।



वासना [सु० ६]=वासना [१७८]।

विषयेन्द्रिय [का० ६]=विषयग्राहक इन्द्रिय [१७२]।

विसअमण्डल [म० १]=विषयमण्डल [१७७, १७८]।

सुख दुखेतेँ [लु० १]=सुख-दुःखसँ [१७२]।

सुभासुभ [का० १३]=शुभाशुभ [१७२]।

हरि हर बाह्म भट्टा [भा० १]=हरिहरब्रह्मा भट्ट [१७२, १७३]।

## योगसाधन [अन्तःशक्तिसाधन]

अणहकसन [म० १]=अनहत-कर्षण=अनाहत-कर्षण=अनाहत-घन-गर्जन [३०४, ३०६]।

अणहा [वी० १]=अनहा=अनहद=अनाहत नाद [३०६]।

अधराति [सु० ४]=अर्धरात्रि=सहस्रारसँ हृत्पद्मक मध्य धरिक प्राणक स्थिति [२६४]।

अनहा डमरु [का० ४]=अनाहत-डमरू। द्र० अणहकसन।

अन्तराले [ज० १]=अन्तरालमे=मध्यमे [२५०, २५१, २५४]।

अनाहत [स० १]——द्र० अणहा।

अमिअ पाण [सु० २]=अमृत पान=सामरस्ययोगामृत [३३६]।

अवधूइ [सु० ३], अवधूती [वी० १]=अवधूती नाड़ी [२४६]=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

आलि कालि [का० ३, का० ४, वी० १]=इड़ा-पिङ्गला नाड़ी [२५०]।

ओडिआणे [गु० १]=उड्डीयाने=उड्डीयान पीठमे [३५६]।

कमल [सु० ४]=शिरःस्थ महासुखपद्म (चक्र) [२७२]=शिरःस्थ सहस्रार-पद्म [२८६]।

कमलरस [गु० १]=सहस्रारक अमृत [३३६]।

काअणावड़ि [स० ३]=कायनावक=त्रिशरणमे काय-नावक [१६६]।

काआ तरुवर [लु० १]=काया तरुवर=काय-वृक्ष श्रेष्ठ [१६६]।

कुम्भीरे [कु० १]=कुम्भाके=कुम्भकप्राणायामे [३४६]।

गअणदाकलि [म० १] = गगन-टाकलि ( शब्द वा ध्वनिविशेष—द्र० च० गी० को० पृ० ५६ पा० टि) = आकाशक अनाहत नाद (द्र० ऐडन) = शून्यता-शब्द (सं० टी०) ।

गअणे उठि [भु० २] = गगने उठि = महासुखकमलवन (चक्र)मे जाए (सं०टी०) = सहस्रार-कमलवन जाए [२८६] ।

गअणत [शा० १] = गगनमे = सहस्रारस्थ शून्यमे (द्र० गअणे उठि, गअण टाकलि ) ।

गिरिवरसिहर [शा० १] = गिरिवरशिखर = मेरुशिखर = मेरुदण्ड-रूप मेरुपर्वतक शिखर [२५१,२२२,२२४] ।

गुहाँ [शा० १] = गुहामे लीन = मेरुदण्ड-कन्दरामे लीन [२५४] ।

गङ्गा जउना [डो० १] = गङ्गा-यमुना = इडा-पिङ्गला [२५०] ।

घडुली [वि० १] = घटी (सं० टी०) = संवृत्ति-परमार्थ सत्यद्वयकेँ घटित केनिहारि अवधूतिका नाड़ी (सं० टी०) = सुषुम्ना नाड़ी [२५२] ।

चउकोडि [भु० ८] = चतुष्कोटि [२७२] ।

चउसठि [वि० १] = चौँसठि (निर्माणचक्र वा आधारपद्मक बौद्धकथित-दल-संख्या) [२६४, ३४१] ।

चण्डाली [भु० ८, का० ७, धा० १] = चण्डा—आली = कुण्डलिनी [२७५-३४२] ।

चन्द सूज्ज [डो० १] = चन्द्रसूर्य = ललना-रसना = इडा-पिङ्गला [२५०,२५२] ।

चान्दसुज [गु० १]——द्र० चन्द सूज्ज ।

चौषट्ठि [का० ५]——द्र० चउसठि ।

तथतानादेँ [क० १] = तथता-नादेँ = तथागतता-नादेँ [३०२] ।

तुर्ये [कु० २] = तुरीय [३१०] ।

दाहिण वाम [चा० १] = रसना-ललना = पिङ्गला-इडा [२५०] ।

दुलि [कु० १] = द्वयाकार जतए लीन होथि, ताहि महासुखकमलकेँ (सं० टी०) = सहस्रारक अमृतकेँ [३२६] ।

देहनअरी विहरइ [का० ४] = देहनगरी विहरैत छथि = अण्डमय निज पिण्ड-पीठमे [२२२] वा देह-देवालयमे [२४०] विहरैत छथि ।

धमण चमण [गु० १] = इडा-पिङ्गला [२५०] ।

न रवि शशि [स० २] = ने पिङ्गला, ने इडा [२५०] ।



नलिणीवन [भु० ३] = नलिनीवन = महापद्मवन = सहस्रार-पद्मवन [३४३] ।

नाडि [कु० २] = नाड़ी [२४८-२६३] ।

नाडिशक्ति [का० ४] = नाड़ी-शक्ति = महानाड़ीक अन्तःस्थिता शक्ति = कुण्डलिनी शक्ति वा प्राणशक्ति [२८६] ।

नाद [कु० ३, त० १] = नाद [३००] ।

नाद न बिन्दु न [स० २] = नाद-बिन्दु किछु नहि [३०२] ।

पद्मवण [भु० ३] = पद्मवन = महापद्मवन = सहस्रारपद्मवन [३४३] ।

पिठा [कु० १, ढे० १] = पीठा = पीठ [३५०-३५६] ।

वतिश जाम्बिवनि [वी० १] = बत्तीस नाड़ी [२४८] रूप तन्त्रीक ध्वनि ।

वतिस जोइणी [भु० ४] = बत्तीस नाड़ी [२४८] ।

वाम दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब० २, शा० १] = ललना-रसना = इडा-पिङ्गला [२५०] ।

वाकनाडिआ [का० ३] = महानाड़िका = महानाड़ी [२५३] ।

बिन्दुणाद [क० १] = बिन्दु-नाद [३००] ।

मज्झ [का० ६] = मध्य [३५१] ।

मणपवण [का० ८] = मन-पवन = मन-प्राण [३२३] ।

मणि [त० २] = मणिपूर [३४६] ।

मणिकुलें [गु० १] = मणिकुलेँ = मणिमूलेँ [सं० टी०] = मणिपूरसँ [३४६] ।

माझ [क० १] = मध्य [२५०, ३५१, ३२४] ।

माझेँ [धा० १] = मध्यमे । द्र० माझ ।

मुसा पवणा [भु० २] = मूस-पवना = प्राण [२६१] रूपी मूस [तत्त्वयोगक पूर्त] ।

मेरुशिखर [वी० १] = मेरुशिखर । द्र० गिरिवरसिहर ।

रवि शशी [का० ४] = रवि-शशि = पिङ्गला-इडा [२५०-२५२] ।

वण [शा० १, भु० १] = वन = कायपर्वतवन [सं० टी०] = महापद्मवन । द्र० पद्मवन ।

विरमानन्द [भु० ४] = विलक्षण शुद्ध आनन्द [द्र० ओएह गीत] [२७४] ।

शासु [का० ४]=श्वास [२४६]।

शिखरे [कु० ३]——द्र० गिरिवर सिहर।

ससहर [सु० ४, का० ७, घा० १]=शशधर=बोधिचित्त-चन्द्र [तीनू गीतक सं० टी०] अथवा चन्द्रमण्डल=चित्तचन्द्र [२२३], प्राणचन्द्र [२२४] या इड़ा [चन्द्र] नाड़ीमण्डल [२४०]

साम्धि [शो० १, वी० १]=सन्धि=वाम-दक्षिण नाड़ीक सन्धि वा मध्य [२५०, २२४]।

सासु [गु० १]=श्वास [२४६]।

सुखपुर [कु० ३]=महासुखचक्र [सं० टी०]=सहस्रारचक्र [२५६]।

सुज, ससि [वी० १]=सूर्य-चन्द्र=पिङ्गला-इड़ा नाड़ी [२४०]।

सुसुरा [कु० १]=श्वास [२४६]।



# द्वितीय खण्ड